रजिस्ट्री सं० डी० एल०-33004/99 REGD. NO. D. L.-33004/99

भारत का राजपत्र
The Gazette of India

असाधारण
EXTRAORDINARY
भाग II—खण्ड 3—उप-खण्ड (ii)
PART II—Section 3—Sub-section (ii)
प्राधिकार से प्रकाशित
PUBLISHED BY AUTHORITY

सं. 248] नई दिल्ली, बृहस्पतिवार, मार्च 16, 2006/फाल्गुन 25, 1927
No. 248] NEW DELHI, THURSDAY, MARCH 16, 2006/PHALGUNA 25, 1927

विधि और न्याय मंत्रालय

(विधायी विभाग)

अधिसूचना

नई दिल्ली, 16 मार्च, 2006

का.आ. 352(अ).—राष्ट्रपति द्वारा किया गया निम्नलिखित आदेश सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है :—

आदेश

कानपुर (उत्तर प्रदेश) के श्री मदन मोहन द्वारा राष्ट्रपति को संविधान के अनुच्छेद 103 के खंड (1) के अधीन आसीन संसद् सदस्य (राज्य सभा), श्रीमती जया बच्चन की अभिकथित निरर्हता की याचिका प्रस्तुत की गई है;

और जबकि उक्त याची ने अपनी याचिका में यह प्रकथन किया है कि श्रीमती जया बच्चन को राज्य सभा के लिए उनके निर्वाचन के पश्चात्, उत्तर प्रदेश सरकार ने 14 जुलाई, 2004 से उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया जिससे वह प्रदान की गई सुविधाओं के कारण संविधान के अनुच्छेद 102 के खंड (1) के उपखंड (क) के अर्थान्तर्गत लाभ का पद धारक हो गई;

और जबकि संविधान के अनुच्छेद 103 के खंड (2) के अनुसरण में निर्वाचन आयोग की राय इस बारे में मांगी गई थी कि क्या श्रीमती जया बच्चन संविधान के अनुच्छेद 102 के खंड (1) के अधीन उस सदन की सदस्य बने रहने के लिए निरर्हित हो गई हैं;

और जबकि निर्वाचन आयोग ने अपनी यह राय (उपाबंध द्वारा) दी है कि श्रीमती जया बच्चन उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् की अध्यक्ष के रूप में उनकी नियुक्ति पर 14 जुलाई, 2004 से ही राज्य सभा की सदस्य होने से संविधान के अनुच्छेद 102 के खंड (1) के उपखंड (क) के अधीन निरर्हित हो गई हैं;

और जबकि निर्वाचन आयोग की राय प्राप्त होने के उपरांत इस विषय पर विभिन्न वर्गों से अनेक प्रतिवेदन प्राप्त हुए तथा उन पर सावधानीपूर्वक विचार किया गया;

और जबकि निर्वाचन आयोग की राय में दिए गए तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करके और इससे पूरी तरह संतुष्ट होने के बाद ही;

अतः अब, मैं, आ. प. जै. अब्दुल कलाम, भारत का राष्ट्रपति, संविधान के अनुच्छेद 103 के खंड (1) के अधीन मुझे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, यह विनिश्चय करता हूं कि श्रीमती जया बच्चन को 14 जुलाई, 2004 से ही राज्य सभा की सदस्यता से निरर्हित माना जाये।

16 मार्च, 2006 भारत के राष्ट्रपति

उपाबन्ध

भारत निर्वाचन आयोग

निर्वाचन सदन

अशोक रोड, नई दिल्ली-110001

निर्देश :

संसद् (राज्य सभा) की आसीन सदस्य श्रीमती जया बच्चन की निरर्हता ।

2005 का निर्देश मामला सं0 3

[भारत के संविधान के अनुच्छेद 103(2) के अधीन भारत के राष्ट्रपति से निर्देश]

उपस्थित :

याची की ओर से :

1. श्री एस.एन.शुक्ला, अधिवक्ता
2. श्री मदन मोहन, याची

विरोधी पक्षकार की ओर से :

1. श्री दिनेश द्विवेदी, ज्येष्ठ अधिवक्ता
2. श्री पी.डी. गुप्ता, अधिवक्ता
3. श्री कमल गुप्ता, अधिवक्ता
4. श्री आशीष मोहन, अधिवक्ता

राय

यह संविधान के अनुच्छेद 103(2) के अधीन भारत के राष्ट्रपति से तारीख 20 सितंबर, 2005 का निर्देश है जिसमें निर्वाचन आयोग से इस प्रश्न पर राय मांगी गई है कि क्या श्रीमती जया बच्चन, आसीन संसद् (राज्य सभा) सदस्य संविधान के अनुच्छेद 102(1) के अधीन उस सदन की सदस्य होने के लिए निरर्हित हो गई हैं ।

2. श्रीमती जया बच्चन (विरोधी पक्षकार) की अभिकथित निरर्हता का प्रश्न राष्ट्रपति को कानपुर (उत्तर प्रदेश) के श्री मदन मोहन (याची) द्वारा प्रस्तुत की गई याचिका (तारीख रहित) से उद्भूत हुआ है जिसमें विरोधी पक्षकार की संविधान के अनुच्छेद 103(1) के अधीन निरर्हता की मांग की गई है । याचिका में याची ने प्रकथन किया है कि जून, 2004 में राज्य सभा के लिए विरोधी पक्षकार के निर्वाचन के पश्चात् उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हे राज्य सरकार के मुख्य सचिव के हस्ताक्षराधीन तारीख 14 जुलाई, 2004 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा उत्तर प्रदेश फिल्म विकास

परिषद (जिसे इसमें इसमें पश्चात "परिषद" कहा गया है) के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया । याची ने दावा किया है कि तारीख 14-7-2004 के का0ज्ञा0 द्वारा अध्यक्ष के रूप में विरोधी पक्षकार की नियुक्ति करके अध्यक्ष के रूप में ऐसी नियुक्ति पर उन्हें कैबिनेट मंत्री का दर्जा भी प्रदत्त किया गया । याची की दलील यह थी कि परिषद के अध्यक्ष के रूप में विरोधी पक्षकार को प्रदान की गई सुविधाओं ने संविधान के अनुच्छेद 102(1) (क) के अर्थान्तगत उन्हें लाभ के पद का धारक बना दिया है और इस प्रकार उन्होंने राज्य सभा के सदस्य होने के लिए ऐसी नियुक्ति पर निरर्हता उपगत कर ली ।

3. आयोग ने विरोधी पक्षकार को, 31 अक्तूबर, 2005 तक याचीका के उत्तर में लिखित कथन प्रस्तुत करने के लिए आयोग की तारीख 6 अक्तूबर, 2005 की सूचना द्वारा बुलाया था और सुनवाई के लिए 28 नवंबर, 2005 नियत की थी ।

4. 26-10-2005 को फाइल किए गए अपने उत्तर में, विरोधी पक्षकार ने दलील दी कि परिषद के अध्यक्ष के रूप में उसकी नियुक्ति पर, उन्हे केवल कतिपय "सुविधाएं" प्रदान की गई थी न कि कोई वेतन, मानदेय या भत्ते । उन्होंने दावा किया है कि उन्हें प्रदान किए गए कैबिनेट मंत्री दर्जे मद्दे "सुविधाएं" प्रदान की गई थी और न कि परिषद के अध्यक्ष के रूप में । उन्होंने आगे प्रकथन किया कि उन्हें कैबिनेट का दर्जा, फिल्म के क्षेत्र में उनकी महत्ता की दृष्टि से प्रदान किया गया था और यह कि परिषद को सहायता और सलाह देने के लिए नियुक्ति सम्मानार्थ हैसियत में थी । उन्होंने यह भी तर्क दिया था कि उत्तर प्रदेश में उनके मंत्री होते हुए (अनुमानतःउन्हें प्रदान किए गए कैबिनेट मंत्री के दर्जे के संबंध में निर्देश है) संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 (जिसे इसमें इसके पश्चात '1959 का अधिनियम कहा गया है) की धारा 3 (क) के उपबंधों के अधीन निरर्हता से संरक्षण प्राप्त था जो घोषित करता है कि संघ या किसी राज्य के लिए मंत्री, राज्य मंत्री या उपमंत्री द्वारा धारित कोई पद, चाहे पदेन हो या नाम से, धारक को संसद् के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए या सदस्य बने रहने के लिए निरर्हित नहीं करेगा । उन्होने 8 सप्ताह तक सुनवाई को इस आधार पर स्थगित करने के लिए अनुरोध किया था कि राज्य सभा में उनके निर्वाचन को चुनौती देने वाली उसी अर्जीदार द्वारा फाइल की गई निर्वाचन अर्जी के संबंध में परिषद के अध्यक्ष के रूप में उनकी नियुक्ति से संबंधित अभिलेख इलाहाबाद उच्चन्यायालय (लखनऊ-न्यायपीठ) में थे, और उन्हे दस्तावेज प्राप्त करने और आगे उत्तर फाइल करने के लिए और समय की आवश्यकता है ।

5. उपरोक्त अनुरोध पर, आयोग ने 7-12-2005 तक सुनवाई स्थगित कर दी और 21-11-2005 तक अनुपूरक उत्तर फाइल करने के लिए विरोधी पक्षकार को अनुज्ञात किया था । उन्हें अपने उत्तर में निर्दिष्ट निर्वाचन अर्जी की प्रति और उस मामले में उच्चन्यायालय द्वारा पारित आदेशों की प्रति फाइल करने के लिए कहा गया था ।

6. याची ने 29-11-2005 को विरोधी पक्षकार के लिखित कथन का अपना प्रत्युत्तर फाइल किया था । प्रत्युत्तर में याची ने दोहराया कि परिषद के अध्यक्ष् के पद पर विरोधी पक्षकार की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की गई थी और उन्हें अध्यक्ष के रूप में ऐसी नियुक्ति के कारण कैबिनेट मंत्री का रैंक दिया गया था । उन्होंने यह भी दलील दी कि अपनी नियुक्ति के आदेश के निबंधन के अनुसार विरोधी पक्षकार निम्नलिखित फायदों और सुविधाओं की हकदार थी :--

> 5,000 रूपए प्रतिमास का मानदेय ।

> राज्य के भीतर 600 रूपए और राज्य के बाहर 750 रूपए प्रतिदिन का दैनिक भत्ता ।

> मनोरंजन व्यय मद 10,000 रूपए प्रतिमास ।

> ड्राइवर सहित स्टाफ कार, कार्यालय और निवास पर टेलीफोन, एक निजी सचिव, एक वैयक्तिक सहायक और दो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी ।

> अंगरक्षक और रात्रि अनुरक्षक ।

> उन्हें और उनके परिवार के लिए निःशुल्क आवास और चिकित्सा उपचार सुविधाएं ।

> जब दौरे पर हों तो सरकारी सर्किट हाउस/गेस्ट हाउस में निःशुल्क वास ।

7. याची ने दलील दी कि विरोधी पक्षकार द्वारा धारित पद पर दी गई उपर्युक्त सुविधाएं और धन संबंधी फायदे संविधान के अनुच्छेद 102(1) (क) के अर्थान्तर्गत लाभ का पद है । उन्होंने यह भी कथन किया कि विरोधी पक्षकार ने 2004 में राज्य सभा का निर्वाचन लड़ने के समय उसी पद से त्यागपत्र दे दिया था उनके स्वयं के त्यागपत्र से यह प्रकट होता है कि उन्होंने उस पद को लाभ का पद माना था जिसे निरर्हता लागू होती है । याची ने और दलील दी कि 1959 के अधिनियम की धारा 3(क) के उपबंधों पर विरोधी पक्षकार द्वारा लिया गया अवलंब भ्रामक था

क्योंकि उस धारा के उपबंध मंत्री द्वारा धारित किसी पद का बचाव करते हैं चाहे पदेन हो या नाम द्वारा और न कि किसी पद के धारक को जिसे वर्तमान मामले में किसी मंत्री का दर्जा दिया गया हो । याची ने राज्य सभा के तत्कालीन आसीन सदस्य श्री आर.मोहनरंगम के मामले में इस आशय का कि तमिलनाडु सरकार के विशेष प्रतिनिधि के पद पर उसकी नियुक्ति के कारण उसके द्वारा प्राप्त फायदों ने पद को लाभ का पद बना दिया था, यद्यपि उन्होंने उस मामले में कोई मानदेय/वेतन प्राप्त नहीं किया था ; 1981 में राष्ट्रपति को आयोग द्वारा दी गई राय का अवलंब लिया था ।

8. 2 दिसंबर, 2005 को विरोधी पक्षकार ने अपने काउंसेल के माध्यम से इस आधार पर कि अपने पति की बीमारी के कारण उन्हे मामले में अपना और उत्तर फाइल करने के लिए कम से कम पंद्रह दिन का समय चाहिए, सुनवाई की और मुल्तवी करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था । आयोग ने इस अनुरोध को मान लिया था और सुनवाई को अतिरिक्त लिखित कथन, यदि कोई हो, फाइल करने के लिए 15 दिसंबर, 2005 तक समय बढ़ाने के साथ, 28 दिसंबर, 2005 तक सुनवाई मुल्तवी कर दी गई थी । 20 दिसंबर, 2005 को विरोधी पक्षकार के काउंसेल ने उनके पति की बीमारी के आधार पर सुनवाई को और मुल्तवी करने की प्रार्थना के साथ दूसरा आवेदन प्रस्तुत किया था और यह कथन किया कि बीमार पति को उसकी निरंतर आवश्यकता है । आयोग ने अनुरोध को मंजूर कर लिया, साथ ही 12 जनवरी, 2006 तक सुनवाई को और मुल्तवी कर दिया । अतिरिक्त उत्तर/लिखित कथन फाइल करने के लिए समय को 2 जनवरी, 2006 तक बढ़ा दिया गया था ।

9. 6 जनवरी, 2006 को विरोधी पक्षकार ने अर्जी का अतिरिक्त उत्तर प्रस्तुत किया । अपने अनुपूरक उत्तर में विरोधी पक्षकार ने कथन किया कि याची ने अपने प्रत्युत्तर में नयी दलील दी हैं जो न्यायिक कार्यवाहियों में सामान्य रूप से स्वीकार्य प्रथा नहीं है । उन्होने यह भी पुनः कहा था कि उन्होने कोई वेतन/मानदेय या प्रतिकरात्मक भत्ता स्वीकार नहीं किया था और उन्होंने उनके कैबिनेट मंत्री के दर्जे की मंजूरी की दृष्टि से केवल "सुविधाए" प्राप्त की थी उन्होने यह और कथन किया कि उन्होने किसी रूप में कोई आवासीय स्थान प्राप्त नही किया था और राज्य कोष से कोई धन उन पर खर्च नहीं किया गया था । उन्होने यह जोड़ा कि उन्होने कोई टेलीफोन या चिकित्सा सुविधा का उपयोग नही किया जिसके लिए वह अपनी नियुक्ति के आदेश द्वारा हकदार थी । उन्होंने यह भी दलील दी कि राज्य सभा का निर्वाचन लड़ने के पूर्व उसी पद से उन्होंने त्याग पत्र का लाभ का पद होने के मुद्दे से कोई लेना देना नहीं है । उन्होने यह भी कथन किया कि निर्देश में उठाया गया प्रश्न उसी याची द्वारा 2004 की निर्वाचन याचिका में

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णय की विषय वस्तु थी, अतः राय में भिन्नता से बचने के लिए वर्तमान निर्देश मामले में न्याय निर्णयन उच्च न्यायालय द्वारा अपना विनिश्चय दिए जाने तक आस्थगित किया जाए ।

10. अपने अतिरिक्त उत्तर में विरोधी पक्षकार ने इस आधार पर कि प्रश्नगत उनकी नियुक्ति से संबंधित अभिलेख उच्च न्यायालय से प्राप्त होने अपेक्षित हैं, सुनवाई की मुल्तवी के लिए और अनुरोध किया । तथापि आयोग ने इस अनुरोध को नहीं माना क्योंकि उन्हें पहले ही बार-बार अवसर दिए जा चुके थे और उनके अनुरोध पर सुनवाई को पहले ही तीन बार मुल्तवी किया जा चुका था और विनिश्चय किया कि सूची के अनुसार सुनवाई 12-1-2006 को होगी ।

11. तारीख 12.1.2006 को सुनवाई के समय अर्जीदार अपने विद्वान कांउसेल श्री एस.एन. शुक्ला के साथ उपसंजात हुआ, विद्वान काउंसेल ने अपनी मौखिक दलील में उत्तर प्रदेश सरकार के तारीख 14.7.2004 के कार्यालय ज्ञापन सं0 492/19-2-2004 के प्रतिनिर्देश किया जिसके द्वारा विरोधी पक्षकार को परिषद का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था । उन्होंने दलील दी कि विरोधी पक्षकार को परिषद का अध्यक्ष नियुक्त करने वाला ज्ञापन स्पष्ट रूप से कथन करता है कि इस नियुक्ति के कारण उनको केबिनेट मंत्री दर्जा मिला था और वे समय-समय पर यथासंशोधित राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञापन सं0 14/1/46/87/सी एक्स(1) तारीख 22.3.1991 में वर्णित सुविधाओं की हकदार हो जाती है, जो विनिर्दिष्ट रूप से उस वेतन/मानदेय, भतों और अन्य सुविधाओं को प्रगणित करता है जिनके लिए केबिनेट मंत्री की प्रास्थिति का अनुदत्त प्राधिकारी हकदार है । श्री शुक्ला ने कथन किया कि विरोधी पक्षकार राज्य के भीतर 600/-रू0 और राज्य से बाहर 750/- रू0 के दैनिक भत्ते की हकदार थीं । अतः विद्वान काउंसेल के अनुसार विरोधी पक्षकार को संदेय दैनिक भत्ता संसद् सदस्य को संदेय दैनिक भत्ते की रकम से अधिक है, परिषद की अध्यक्षा 1959 के अधिनियम की धारा 3 के खंड (ञ) के अधीन उपबंधित छूट प्राप्त प्रवर्ग के अधीन नहीं आती है ।

12. श्री शुक्ला ने और दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 102(1) (क) के उपबंधों को आकृष्ट करने के लिए तीन शर्तों का समाधान होना अपेक्षित है अर्थात् (i) कोई पद होना चाहिए जिस पर नियुक्ति की गई है (ii) यह लाभ का पद होना चाहिए (iii) पद किसी सरकार के अधीन होना चाहिए । विद्वान कांउसेल के अनुसार तथ्य यह है कि विरोधी पक्षकार की उस पद पर नियुक्ति से पूर्व परिषद के अध्यक्ष का पद विद्यमान था और अन्य व्यक्तियों की

नियुक्ति समय-समय पर उस पद पर की जाती रही थी इससे यह स्पष्ट होता है कि यह पद विद्यमान था और विरोधी पक्षकार से स्वतंत्र था अतः कान्ता कथूरिया *बनाम* मानक चंद शर्मा (एआईआर एससी 694) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित परीक्षण से यह समाधान हो गया था कि संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) के अर्थान्तर्गत यह एक "पद" था । श्री शुक्ला ने दूसरी शर्त पर आते हुए यह दलील दी कि समय-समय पर यथासंशोधित तारीख 22.3.1991 के कार्यालय ज्ञापन के साथ पठित तारीख 14.7.2004 के नियुक्ति आदेश की भाषा से यह स्पष्ट होता है कि विरोधी पक्षकार मासिक मानदेय, विभिन्न भत्तों और अन्य सुविधाओं जैसे आवास, यान, कर्मचारिवृंद आदि के लिए हकदार थी और उसके अनुसार यह संदेह से परे साबित हो गया है कि विरोधी पक्षकार द्वारा धारित पद 'लाभ का पद' है । उसने शिबू सोरेन *बनाम* दयानंद सहाय (एआईआर एस सी 2503) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का आश्रय लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वेतन से भिन्न पारिश्रमिक भी किसी पद को 'लाभ का पद' बनाता है । उसने श्री मोहन रंगम की निरर्हता (1981 के निर्देश मामला सं0 7) के मामले में राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश का आश्रय लिया जिस मामले में श्री मोहन रंगम को आयोग की राय के आधार पर निरर्हित किया गया था । तीसरी शर्त के संबंध में श्री शुक्ला ने यह दलील दी कि यह अवधारित करने के लिए नियत परीक्षण कि क्या पद सरकार के अधीन है, वह परीक्षण है कि क्या नियुक्ति सरकार द्वारा दी गई है और क्या पदधारी को सरकार द्वारा पद से हटाया जा सकता है । श्री शुक्ला ने दलील दी कि वर्तमान मामले में, इस तथ्य के आधार पर कोई संदेह या दो राय नहीं हे कि नियुक्ति उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा की गई थी और यह कि राज्य सरकार को नियुक्ति को समाप्त करने की शक्ति है । उसने अपनी इस दलील के समर्थन में कि इस विवाद्यक का अवधारण करने का निर्णायक परीक्षण नियुक्ति का परीक्षण है, डा. देवराव लक्ष्मण आन्दे *बनाम* केशव लक्ष्मण बोरकार (एआईआर 1958 बम्बई 314) के मामले में बम्बई उच्च न्यायालय के विनिश्चय को भी उदृत किया । श्री शुक्ला ने यह और दलील दी कि परिषद का बजट पूर्ण रूप से राज्य सरकार की निधियों से उपलब्ध कराया गया था और यह कि विरोधी पक्षकार ने परिषद के अध्यक्ष के रूप में सरकार के और सरकार के लिए कृत्यों का निर्वहन किया ।

13. विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल, श्री दिनेश द्विवेदी, विरोधी पक्षकार की ओर से उपसंजात हुए । उसने आरंभ में दलील दी कि विरोधी पक्षकार द्वारा धारित पद संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 के खंड (ज) और खंड (झ) के अधीन छूट प्राप्त प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा । याची के विद्वान काउंसेल की दलील को निर्दिष्ट करते

हुए यह कि विरोधी पक्षकार संसद् सदस्य को संदेय दैनिक भत्तों से अधिक दैनिक भत्तों के लिए हकदार थी, उसने दलील दी कि विरोधी पक्षकार को दैनिक भत्ता केवल तभी संदेय था जब वह परिषद के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्य के संबंध में यात्रा करती न कि बैठक की फीस के रूप में ।

14. उसके अनुसार तारीख 14.7.2004 के कार्यालय ज्ञापन के अनुसार परिषद की अध्यक्ष के रूप में विरोधी पक्षकार को नियुक्त करने के कारण वह किसी वेतन के लिए हकदार नहीं थीं, और उसे केवल, केबिनेट मंत्री के दर्जे के कारण 'सुविधाएं' प्रदान की गई थीं । ऐसी 'सुविधाओं' में कोई वेतन या कोई वित्तीय लाभ सम्मिलित नहीं है, और उन्होंने केवल प्रतिकरात्मक भत्ता ही आहरित किया । उसने दलील दी कि उनको केबिनेट का दर्जा केवल उनके फिल्मी व्यक्तित्व के दर्जे को ध्यान में रखते हुए दिया गया था, और यह उनकी परिषद के अध्यक्ष के रूप में स्वतंत्र नियुक्ति थी । श्री द्विवेदी ने दलील दी कि केबिनेट मंत्री कतिपय सुविधाओं का हकदार था और विरोधी पक्षकार को केवल ऐसी सुविधाएं ही अनुदत्त की गई थीं । उसने 1959 के अधिनियम की धारा 2(क) के अनुसार 'प्रतिकरात्मक भत्ते' की परिभाषा को निर्दिष्ट किया । उसने कथन किया कि विरोधी पक्षकार ने कोई मानदेय आहरित नहीं किया या कोई निवासीय आवास या टेलीफोन की सुविधाएं प्राप्त नहीं की तथा अतः अध्यक्ष के पद को लाभ का पद नहीं माना जा सकता, विरोधी पक्षकार को कोई वित्तीय फायदा उद्भूत नहीं हुआ था क्योंकि स्वयं ही वह बहुत संपन्न व्यक्ति हैं ।

15. विद्वान ज्येष्ठ कांउसेल ने यह और दलील दी कि परिषद के अध्यक्ष का पद सरकार के अधीन किसी पद के रूप में माने जाने के लिए अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता है । उसके अनुसार पद पर नियुक्ति और पद से हटाने की शक्ति का सरकार में निहित होना ही 'सरकार के अधीन पद' के प्रवर्ग के अधीन पद को लाना पर्याप्त नहीं था । उसने दलील दी कि पदधारी द्वारा कर्तव्यों के पालन में सरकार द्वारा प्रयोक्तव्य नियंत्रण ही निर्णायक था जिससे यह अवधारण किया जा सके कि उसके द्वारा धारित पद अनुच्छेद 102(1)(क) के प्रयोजनों के लिए सरकार के अधीन पद समझा जाएगा । विद्वान कांउसेल ने अपने दावे के समर्थन में शिबू सोरेन मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया । उसने दावा किया कि फिल्मों के विकास से संबंधित विषयों पर सरकार को सलाह देने के लिए परिषद एक स्वशासी निकाय था, और सरकार किसी भी रीति से परिषद के कार्यकरण में कोई हस्तक्षेप नहीं करती है । उसने यह भी कथन किया कि यह नहीं कहा जा सकता कि परिषद अपने कर्तव्यों की प्रकृति के कारण सरकार के किसी महत्वपूर्ण कृत्य का निष्पादन नहीं कर रही है । इसे सरकार के वैकल्पिक कृत्य के रूप में समझा जाना चाहिए । इनको ध्यान में रखते हुए विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल ने दलील दी कि परिषद सरकार के अधीन कोई

कार्यालय नहीं था । श्री द्विवेदी ने यह भी कथन किया कि परिषद का स्वयं का कोई बजट नहीं है और परिषद के व्ययों का संदाय सरकार की निधियों से किया गया था । श्री द्विवेदी ने दलील दी कि शिबू सोरेन के मामले में उसने प्रतिकरात्मक भत्तों के अतिरिक्त मानदेय भी प्राप्त किया था, और इसलिए वह मामला वर्तमान मामले से सुभिन्न था जहां विरोधी पक्षकार ने कोई मानदेय प्राप्त नहीं किया है । उसने यह भी दलील दी कि याची द्वारा निर्दिष्ट श्री मोहनरंगम का मामला विद्यमान मामले में लागू नहीं होता था क्योंकि उस मामले के निष्कर्ष पश्चात्वर्ती मामलों में उच्चतम न्यायालय की नजीरों के विरुद्ध थे । दूसरी ओर उसने राम कृष्ण हेगड़े (एआईआर 1993 केटी 54) के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया ।

16. याची के विद्वान काउंसेल ने अपने प्रत्युत्तर में कथन किया कि 1959 के अधिनियम की धारा 3(ज) या धारा 3(झ) के अधीन छूट खंड के अधीन आने वाले किसी पद का प्रश्न केवल वहां उत्पन्न होता है जहां कोई व्यक्ति केवल प्रतिकरात्मक भत्ते का हकदार था जो संसद् सदस्य के लिए हकदार दैनिक भत्ते से अधिक न हो । उसने कथन किया कि वर्तमान मामले में याची उन सुविधाओं जैसे यान, चालक, कर्मचारिवृंद, टेलीफोन आदि से परे दैनिक भत्ते, प्रतिकरात्मक भत्ते, मकान किराया, और मानदेय के लिए हकदार थीं । उसके अनुसार यह तर्क कि विरोधी पक्षकार केवल सुविधाओं के लिए हकदार थीं जो भ्रामक था । विद्वान काउंसेल ने दलील दी कि यह निरर्थक है कि क्या हकदारी केवल वेतन के नाम पर या किसी अन्य नाम से है और बल ' हकदारी' पर था न कि वास्तव में आहरित रकम पर । उसने दलील दी कि इस समय कोई व्यक्ति रकम आहरित नहीं कर रहा हो किंतु वह भविष्य में किसी समय आहरित करने का चयन कर सकता है । उसने यह भी कथन किया कि यदि वह किसी ऐसी रकम की हकदार थी कि जो ऐसी हकदारी को 'लाभ' के अर्थान्तर्गत लाती है । उसने एम वी राजशेखरन *बनाम* वातल नागराज [(2002) 2 एससीसी 704] और रबिन्द्र कुमार नायक *बनाम* कलक्टर मयूरभंज [(1999) 2 एससीसी 627] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर अपनी इस दलील का समर्थन करने के लिए निर्भर किया कि रकम का वास्तविक आहरण सुसंगत नहीं है और रकम के आहरण की हकदारी है, अर्हता के मुद्दे का विनिश्चय करने के लिए यही निर्णायक है । विद्वान काउंसेल ने यह भी दलील दी कि विरोधी पक्षकार का श्री रामकृष्ण हेगड़े के मामले पर निर्भर रहना लागू नहीं होता है, नियुक्ति आदेश ही यह स्वतः स्पष्ट करता है कि श्री हेगड़े योजना आयोग

के उपाध्यक्ष के रूप में किसी वेतन के हकदार नहीं थे और यह कि वह केवल प्रतिकरात्मक भत्ता ही आहरित कर सकते थे ।

17. सुनवाई के निष्कर्ष पर दोनों पक्षकारों को लिखित कथन फाइल करने के लिए एक सप्ताह का समय दिया, जो उन्होंने फाइल किया ।

18. आयोग ने सावधानीपूर्वक विचार किया है और दोनों पक्षकारों की ओर से दी गई लिखित और मौखिक दलीलों का सम्यक् रूप से विश्लेषण किया है ।

19. सर्वप्रथम आयोग के समक्ष विद्यमान कार्यवाहियों के संबंध मे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की निर्वाचन याचिका सं0 4 के लंबित रहने के प्रभाव की परीक्षा करना चाहेगा । यह अवलोकन किया गया है कि निर्वाचन याचिका में उठाया गया मुख्य मुद्दा याची (जो इसमें भी याची है) के नामांकन को रद्द करने का है । किसी भी दशा में निर्वाचन याचिका में चुनौती संबद्ध निर्वाचन के विरूद्ध चुनौती तक ही सीमित है, और यह इसे निर्वाचन पश्चात् अर्हता के मुद्दे से संबंधित अनुच्छेद 103(1) के अधीन कार्यवाहियों को आस्थगित करने के लिए आधार नहीं माना जा सकता, जिसका विनिश्चय राष्ट्रपति और केवल राष्ट्रपति द्वारा ही आयोग द्वारा दी गई राय के आधार पर किया जाना है । निर्वाचन आयोग ***बनाम*** डा. सुब्रह्मनियम स्वामी और अन्य (एआईआर 1996 एससी 1810) के मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय द्वारा इस मुद्दे को अनन्य रूप से निपटाया जा चुका है ।

20. आयोग के लिए अवधारण के लिए मुख्य प्रश्न यह था कि क्या उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् के अध्यक्ष का पद जिस पर विरोधी पक्षकार को तारीख 14.7.2004 से नियुक्त किया गया था, संविधान के अनुच्छेद 102 (1)(क) के अर्थांतर्गत उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन एक लाभ का पद है । अनुच्छेद 102 (1)(क) के अधीन निरर्हरता से संबंधित उपबंधों को लाने के पीछे मूलभूत सिद्धांत और संविधान निर्माताओं का वास्तविक आशय यह था कि विधान मंडल को कार्यपालिका से स्वतंत्र रखा जाए । यह वांछनीय समझा गया कि विधान मंडल के सदस्य कार्यकारी सरकार के आभारी न रहे और लोगों के प्रतिनिधि के रूप में अपने लोक कृत्यों के निर्वहन में विचार और कार्य की स्वतंत्रता को खो दें । यह उपबंध कार्यकारी सरकारों पर एक नियंत्रण के रूप में भी कार्य करता है जिससे कि विधान मंडलों के सदस्यों को प्रलोभन से बचाया जा सके ताकि वे निर्वाचकों के प्रति अपने कृत्यों को

व्यक्तिगत लाभ या हानि के प्रतिफल के विना पूरा कर सकें । अशोक कुमार भट्टाचार्य ***बनाम*** अजय विश्वास (एआईआर 1985 एससी 211) में उपरोक्त उपबंधों के पीछे के तर्क को सपष्ट करते हुए उच्चतम न्यायालय नें यह मत व्यक्त किया है कि :

" वह धारणा जो लाभ के पद अभिव्यक्ति को परिभाषित करने में हम पर प्रभाव डालती है कि इसकी परिभाषा अनुच्छेद 102 (1)(क) की अधिनियमिति के उद्देश्य की वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए, विधान मंडल के सदस्यों के बीच कर्तव्य और द्वन्द के जोखिम को को समाप्त किया जा सके या कम किया जा सके अर्थात् इस बात का सुनिश्चय करते हुए कि विधानमंडल में ऐसे व्यक्ति नही हैं जो कार्यपालिका से लाभ प्राप्त करते हैं और जो इस प्रकार उससे प्रभावित हो सकें ।"

21. पुनः उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 102(1)(क) [जो संविधान के अनुच्छेद 191(1)(क) के समान है] के उद्देश्य पर बल देते हुए एम.वी. राजशेखरन ***बनाम*** वातल नागराज (एआईआर 2002एससी 742) के मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया :-

" संविधान के अनुच्छेद 191 के अधीन निरर्हता उपबंधित करने का पहला उद्देश्य है कि विधान सभा या विधान परिषद के लिए निर्वाचित व्यक्ति को किसी प्रकार के सरकारी दबाव के अधीन न रहते हुए निर्भयता से अपने कर्तव्य करने के लिए मुक्त होना चाहिए । अतः न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि क्या अभ्यर्थी द्वारा निर्वहन किए गए कर्तव्यों और सरकार के बीच कोई संबंध है और यह कि किसी विधानमंडल के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने पर उसके ऐसे कर्तव्यों जिनका निर्वहन करना उससे अपेक्षित है के साथ उसके नियोजन के दौरान ऐसे कर्तव्यों के निष्पक्ष निर्वहन के बीच कोई विरोध उत्पन्न होना बाध्यकर है । पूर्वोक्त प्रश्न की परीक्षा करते समय न्यायालय को सार तत्व को देखना आवश्यक होता है न कि उसके रूप को और इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं है कि विभिन्न मामलों में अधिकथित सभी कारणों और परीक्षणों को संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया जाए ताकि सरकार के अधीन लाभ का पद धारण किया जाना गठित किया जा सके ।"

22. " लाभ का पद" पद न तो संविधान में परिभाषित है और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में । तथापि, आयोग ने मामलों की श्रृंखला में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों का उद्धरण देने का फायदा उठाया है जिनमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित परीक्षणों से मूलभूत रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या वह व्यक्ति सरकार

के अधीन किसी पद पर नियुक्त किया गया है और क्या ऐसा पद धारक को फायदा देने वाला पद है । मौलाना अब्दुल शकूर *बनाम* रिखाब चंद (एआइआर 1958एससी 52) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिधारित किया :

"किसी पद के लिए किसी व्यक्ति की नियुक्ति करने की सरकार की शक्ति या उस पद पर उसको बनाए रखना या उसके विवेक से उसकी नियुक्ति को वापस लेना और सरकारी राजस्व में से संदाय यह अवधारित करने में महत्वपूर्ण कारक हैं कि क्या कोई व्यक्ति सरकार के अधीन लाभ के पद धारण किए हुए है, यद्यपि सरकार से भिन्न किसी स्रोत से संदाय हमेशा कोई निश्चायक तथ्य नहीं होता है ।"

23. शिवामूर्ति स्वामी इनामदार *बनाम* अगाड़ी संगन्ना अंदनप्पा (एआईआर 1971 एससीसी 870) में उच्चतम न्यायालय ने ये अवधारित करने के लिए कि केई पद सरकार के अधीन लाभ का पद है जानने के लिए निम्नलिखित परीक्षण बतलाए हैं :-

(i) क्या नियुक्ति सरकार ने की है ;

(ii) क्या सरकार को धारक को पद से हटाने या बर्खास्त करने का अधिकार है ;

(iii) क्या सरकार परिलब्धियों का संदाय करती है ;

(iv) पदधारक के कृत्य क्या हैं और क्या वह उनका निष्पादन सरकार के लिए करता है ; और

(v) क्या सरकार इन कृत्यों के निष्पादन पर किसी नियंत्रण का प्रयोग करती है ।

24. पश्चात्वर्ती अनेक मामलों में उच्चतम न्यायालय ने ये यह अभिधारित किया है कि उपरोक्त परीक्षणों का ये अवधारित करने के लिए कि क्या सरकार के अधीन कोई पद लाभ का पद है संयुक्त रूप से विद्यमान होना आवश्यक नहीं है । मधुकर जी.ई. पाणेकक्कर *बनाम* जसवंत छबीलदार रजानी [(1977) एससीसी 70] में उच्चतम न्यायालय ने सरकार के अधीन कोई पद लाभ का पद है इसका विनिश्चय करने के लिए ये मत व्यक्त किया कि, परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए न कि रूप को और यह कि न्यायालय द्वारा कथित किए गए अनेक तथ्यों को सरकार के अधीन किसी पद को लाभ का पद मानने के लिए संयुक्त रूप से प्रस्तुत नहीं करना चाहिए ।

25. राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट विद्यमान प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए आयोग को उपरोक्त परीक्षण द्वारा मार्गदर्शित होना चाहिए और उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित किए गए उपर्युक्त परीक्षण को परिषद के अध्यक्ष पद

पर विरोधी पक्षकार की नियुक्ति के विद्यमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू करना चाहिए । 'पद' शब्द की परिभाषा उच्चतम न्यायालय ने ऐसी प्रास्थिति या स्थान का निर्वचन करने के लिए की है जिसके साथ कतिपय विशेषकर लोक प्रकृति के एक या एक से कम या अधिक कर्तव्य उपाबद्ध हैं । कांता कथूरिया *बनाम* मानक चंद सुराना (एआईआर 1970 एससी 694) के मामले में, उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित परीक्षण यह था कि पद अस्तित्वशील, स्थायी, अधिस्थायी प्रास्थिति का होना चाहिए जिसका अस्तित्व उसे भरने वाले व्यक्ति से स्वतंत्र था, जो जारी रहा और उत्तराधिकार में उत्तरवर्ती धारकों द्वारा भरा जाता रहा । इस सिद्धांत को रविन्द्र कुमार नायक *बनाम* कलेक्टर मयूर भंज [(1999) 2 एससीसी 627] के मामले में भी अभिनिर्धारित किया गया । एम.बी. राजशेखरन *बनाम* वातल नागराज [(2002) 2 एससीसी 704] , के मामले में भी विशेष रूप से गठित एकल व्यक्ति आयोग के अध्यक्ष का पद भी निर्योग्यता के प्रयोजन के लिए 'पद' निर्धारित किया गया । वर्तमान मामले में, स्वीकृत तथ्यों से यह प्रकट होता है कि परिषद के अध्यक्ष का पद वर्तमान पदधारी से स्वतंत्र अस्तित्व में है और समय-समय पर उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव सहित, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा धारित किया गया है । अतः संविधान के अनुच्छेद 102(1) (क) की पहली अपेक्षा पूर्ण होती है जब विरोधी पक्षकार के अनुच्छेद 102(1)(क) के अर्थांतर्गत उत्तर प्रदेश सरकार के पद पर नियुक्त कर दिया गया है ।

26. उस तर्क या विवाद के लिए भी बहुत कम गुंजाइश है जो विरोधी पक्षकार को विद्वान ज्येष्ठ परामर्शी द्वारा दलील दिया गया या उठाया गया कि वह पद जिस पर उसे नियुक्त किया गया है, उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन पद नहीं है । यह विवादित नहीं है कि वर्तमान मामले में नियुक्ति उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा की गई है, जैसा कि नियुक्ति पत्र तारीख 14 जुलाई, 2004 से प्रकट है, जो उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव द्वारा हस्ताक्षरित किया गया और जो यह दर्शित करता है कि नियुक्ति राज्य के राज्यपाल के नाम से की गई है । विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ परामर्शी ने सुस्पष्ट रूप से अंगीकार किया कि विरोधी पक्षकार की परिषद के अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति समाप्त करने का अधिकार उत्तर प्रदेश सरकार में निहित है और उसके हाथ में है । इसके अतिरिक्त परिषद के कोष पूर्णतः राज्य सरकार द्वारा अनुदत्त किए जाते हैं और यह स्पष्ट रूप से अंगीकार किया गया है कि परिषद का स्वतंत्र बजट नहीं है और इसका व्यय राज्य सरकार के प्रशासनिक विभाग द्वारा किया जाता है ।

27. विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल ने सुन्नुचारला राजू *बनाम* वाईरिचेर्ला प्रदीप कुमार देव (एआईआर 1992 एससी. 1959) के विनिश्चय को प्रोद्धृत किया, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया कि यह अवधारित करने

कि क्या सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति का सत्य परीक्षण पद पर सरकार के नियंत्रण की मात्रा, उसकी संरचना, अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसकी सरकार पर निर्भरता और कार्यात्मक पहलू, अर्थात्, क्या निकाय कोई आवश्यक सरकारी कार्य कर रहा है या मात्र कोई ऐसा अर्थ कर रहा है सरकार के दृष्टिकोण से वैकल्पिक है । सुनवाई के समय उसने कथन किया कि परिषद कोई आवश्यक सरकारी कार्य नहीं कर रही थी और इसके कार्यकलाप सरकार के दृष्टिकोण से मात्र वैकल्पिक माने जा सकते थे क्योंकि यह केवल राज्य में फिल्मों के विकास के संबंध में नीतियों पर सरकार को सलाह दे रही थी ।

28. आयोग विरोधी पक्षकार के विद्वान परामर्शी के उपर्युक्त प्रकथन में कोई दम नहीं पाता । परिषद को राज्य सरकार द्वारा राज्य में फिल्मों के विकास से संबंधित मामलों पर सहायता और सलाह देने के लिए गठन किया गया । यह तथ्य कि राज्य ने परिषद का गठन करना आवश्यक समझा है और परिषद पर अपनी बहुमूल्य निधियां व्यय कर रही है यह दर्शित करता है कि सरकार राज्य में फिल्म उद्योग के विकास की इच्छुक है और इस कार्य को, इस निर्मित्त सहायता और सलाह देने के लिए परिषद का गठन करके, किया है । यह और तथ्य कि विरोधी पक्षकार को कैबिनेट मंत्री की हैसियत से परिषद के अध्यक्ष के पद पर परिचर फायदों और सुविधाओं के साथ नियुक्त किया गया था, से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलना चाहिए कि परिषद और इसके अध्यक्ष को सरकार के लिए कतिपय महत्वपूर्ण कर्तव्य निभाने थे और कार्य पूर्ण करने थे । कोई सरकार किसी महत्वपूर्ण कारण या प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्य के बिना किसी परिषद का गठन और उसमें उसी उच्च हैसियत के साथ नियुक्तियां नहीं करेगी ।
यह दलील देना निरर्थक है कि परिषद् सरकार के या उसके लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर रही है ।

29. विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा यह भी प्रकथन किया गया था कि परिषद् एक स्वशासी निकाय है और वह सरकार के नियंत्रणाधीन नहीं है । किन्तु अपने उपरोक्त प्रकथन के समर्थन में या उसको सिद्ध करने के लिए उनके द्वारा अभिलेख पर कोई चीज नहीं लाई गई है । दूसरी ओर यह तथ्य कि परिषद् का अपना स्वयं का कोई बजट नहीं है और उसके प्रशासनिक व्यय परिषद् के प्रशासनिक रूप से प्रभारी विभाग द्वारा पूरे किए जाते हैं, परिषद् के, जो एक स्वशासी निकाय है और उसपर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है, विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल के प्रकथन को नकारती है ।

30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए इस बारे में अवधारण करने के लिए कि क्या पद 'सरकार के अधीन पद है', उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित कसौटियों का प्रस्तुत मामले में पूरी तरह समाधान हो जाता है । नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की गई है जो नियुक्ति को अपनी स्वेच्छा पर समाप्त करने की शक्ति भी रखती है, उक्त पद के

रखरखाव पर व्यय पूरी तरह राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है, परिषद् का पदधारी अध्यक्ष सरकार के लिए कृत्य करता है और सरकार परिषद् के कृत्यों पर नियंत्रण रखती है । इस प्रकार इस बारे में कोई किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि परिषद् के अध्यक्ष का पद जिसपर विरोधी पक्षकार की नियुक्ति की गई है, 'उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन एक पद है' ।

31. वर्तमान मामले में परस्पर पक्षकारों के बीच मुख्य विवाद इस प्रश्न पर है कि क्या विरोधी पक्षकार द्वारा धारित परिषद् के अध्यक्ष का पद 'लाभ का पद' है । याची के विद्वान काउंसेल का पक्ष कथन यह है कि तारीख 14 जुलाई, 2004 के विरोधी पक्षकार की नियुक्ति के आदेश के कारण जिसके द्वारा उसे कैबिनेट स्तर के मंत्री का दर्जा प्रदान किया गया था, वह समय-समय पर यथासंशोधित राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञापन सं. 14/1/46/87-सीएक्स (1), तारीख 22.3.1991 के निबंधनों के अनुसार निम्नलिखित पारिश्रमिकों और फायदों की हकदार है :

- पांच हजार रुपए प्रति मास का मानदेय ।

- राज्य के भीतर छह सौ रुपए प्रतिदिन और राज्य से बाहर सात सौ पचास रुपए प्रतिदिन की दर पर दैनिक भत्ता ।

- मनोरंजन व्यय मद्दे दस हजार रुपए प्रति मास ।

- चालक सहित स्टाफ कार, कार्यालय और निवास पर टेलीफोन, एक प्राइवेट सेक्रेटरी और एक निजी सहायक तथा दो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी ।

- अंगरक्षक और रात्रि अनुरक्षक ।

- उसे और उसके परिवार के सदस्यों को निःशुल्क आवास और चिकित्सा उपचार ।

- जब वह दौरे पर हों तब सरकारी सर्किट हाउस/गेस्ट हाउसों में निःशुल्क आवास और आतिथ्य ।

32. दूसरी ओर विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा रखा गया पक्ष कथन यह है कि वह ऊपर वर्णित किसी मानदेय की हकदार नहीं हैं और उसे तारीख 22.3.1991 के ऊपर वर्णित कार्यालय ज्ञापन में वर्णित 'सुविधाएं' ही दी गई हैं । विरोधी दलीलों की परीक्षा करने के लिए विरोधी पक्षकार को परिषद् के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करने वाले राज्य सरकार के तारीख 14 जुलाई, 2004 के नियुक्ति आदेश को पुनःप्रस्तुत करना उचित है :

"कार्यालय - ज्ञापन

श्री राज्यपाल महोदय श्रीमती जया बच्चन, मा0 संसद् सदस्य, राज्य सभा को उत्तर प्रदेश राज्य फिल्म विकास परिषद का अध्यक्ष मनोनीत किए जाने की सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं ।

2. श्री राज्यपाल महोदय श्रीमती जया बच्चन, मा0 संसद् सदस्य, को उत्तर प्रदेश राज्य फिल्म विकास परिषद के अध्यक्ष के रूप में कैबिनेट मंत्री का स्तर भी प्रदान करते है, जिसके फलस्वरूप उन्हें समय-समय पर यथा संशोधित गोपन अनुभाग - 1 के कार्यालय ज्ञापन संख्या - 14/1/46/87-सी0 एक्स0(1), दिनांक 22 मार्च, 1991 में वर्णित सुविधाएं उक्त कार्यालय ज्ञापन में इंगित प्रक्रियानुसार प्राप्त होंगी ।

हस्ताक्षर
(करनैल सिंह)
प्रमुख सचिव"

33. राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए उपरोक्त नियुक्ति आदेश के पढ़ने मात्र से ही विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल की दलील नकारात्मक हो जाती है । नियुक्ति आदेश में निर्दिष्ट तारीख 22.3.1991 का कार्यालय ज्ञापन 'वेतन/भत्तों और अन्य सुविधाओं' को विनिर्दिष्ट करता है जिनके लिए उक्त पद पर नियुक्त व्यक्ति, जिसे कैबिनेट मंत्री का दर्जा प्रदान किया गया है, उस कार्यालय ज्ञापन के अनुसार हकदार हो जाता है । विरोधी पक्षकार के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की यह दलील कि उसे ' केवल सुविधाएं' प्रदान की गई थीं और न कि ऐसे पद के धारक को संदेय वेतन और भत्ते उसकी नियुक्ति के आदेश के स्पष्ट शब्दों से सिद्ध नहीं होते । तारीख 22.3.1991 के कार्यालय ज्ञापन में 'सुविधाओं' शब्द को उस कार्यालय ज्ञापन में प्रयुक्त 'अन्य' शब्द के 'सुविधाओं' शब्द के विशेषण के रूप में उसी प्रकार के शब्द के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और जब इस प्रकार पढ़ा जाएगा तो इससे केवल एक ही उपधारणा और निष्कर्ष निकलेगा कि 'वेतन/भत्ता' उक्त कार्यालय ज्ञापन के अर्थान्तर्गत परिषद के अध्यक्ष के पद पर प्राप्त होने वाली सुविधा है । इस प्रकार राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञापन, तारीख 14.7.2004 के अनुसार परिषद के अध्यक्ष के रूप में उसकी नियुक्ति के कारण प्रतिमास पांच हजार रुपए के मानदेय और अन्य भत्तों तथा समय-समय पर यथासंशोधित तारीख 22.3.1991 के राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञापन में विनिर्दिष्ट सुविधाओं की हकदार बन गई थी और न कि आवास, स्टाफ कार, टीए/डीए आदि की सुविधाओं की हकदार बनी थी जैसा कि विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल के द्वारा दलील दी गई है । उक्त काउंसेल का यह प्रकथन कि विरोधी पक्षकार टीए/डीए की तभी हकदार थी जब वह टूर पर गई हों और उसे परिषद की बैठकों में उपस्थित होने के लिए

कोई दैनिक भत्ता नहीं दिया जाता था, इस दृष्टिकोण का और भी समर्थन करता है कि उसे दैनिक भत्ते या प्रत्येक बैठक के लिए फीस की बजाए पांच हजार रुपए प्रति माह के एकमुश्त मानदेय का हकदार बना दिया गया था ।

34. शिबू सोरेन *बनाम* दयानंद सहाय (एआईआर 2001एससी 2583) में उच्चतम न्यायालय का निम्नलिखित मत इस विवाद्यक के लिए सुसंगत है । ""लाभ का पद' न तो संविधान में और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में परिभाषित किया गया है । सामान्य परिदृश्य में 'लाभ' पद कुछ आर्थिक अभिलाभ के विचार को प्रदर्शित करता है । यदि वास्तव में कोई अभिलाभ है तो उस पर 'मानदेय' - 'पारिश्रमिक' - 'वेतन' का लेबल महत्वपूर्ण नहीं है - मूल बात उसका सार है न कि उसका रूप महत्वपूर्ण है और 'आर्थिक अभिलाभ' की रकम की मात्रा भी सुसंगत नहीं है - जिस बात का पता लगाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या संबद्ध व्यक्ति द्वारा उस पद के संबंध में जो वह धारण करता है, प्राप्य धन की रकम उसे कुछ 'आर्थिक लाभ' पहुंचाती है न कि उसकी जेब से हुए व्यय को पूरा करने के लिए प्रतिकर जिससे उस व्यक्ति को कार्यपालिका के दबाव में आने की संभावना रहती है जो उसे वह लाभ प्रदान कर रही है ।"

35. उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त मत को ध्यान में रखते हुए किसी व्यक्ति को इस बारे में कोई भी संदेह नहीं रहता कि परिषद् के अध्यक्ष कि संदेय पांच हजार रुपए प्रतिमास का मानदेय उस पद को धारण करने वाले को 'आर्थिक लाभ' है और वह उसकी जेब से हुए व्ययों को पूरा करने के लिए कोई प्रतिकारात्मक भत्ता नहीं है ।

36. विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में रामकृष्ण हेगड़े *बनाम* कर्नाटक राज्य (एआईआर 1993 कर्नाटक 54) में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेना चाहा है कि विरोधी पक्षकार को कोई मानदेय नहीं दिया जाता था । राम कृष्ण हेगड़े का मामला विरोधी पक्षकार के वर्तमान मामले के तथ्यों से भिन्न है । श्री हेगड़े के मामले में स्वयं योजना आयोग के उपाध्यक्ष के रूप में उसकी नियुक्ति की आदेश में विनिर्दिष्टतया यह कथन किया गया था कि वह किसी वेतन का हकदार नहीं था और केवल यात्रा भत्ते/दैनिक भत्ते, प्रवहन भत्ते आदि ही लेता था जबकि, जैसा कि प्रस्तुत मामले में विरोधी पक्षकार की नियुक्ति के आदेश से दिखायी देता है कि नियुक्ति आदेश उसे राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञापन, तारीख 22.3.1991 के अनुसार विभिन्न अन्य भत्तों और सुविधाओं के अतिरिक्त पांच हजार रुपए प्रतिमास के 'मानदेय' का हकदार बनाता है । यह पहले ही देखा गया है कि मानदेय और अन्य भत्तों कि 'हकदारी', उक्त पद को लाभ का पद बनाती है ।

37. विरोधी पक्षकार के विद्वान काउंसेल की अगली दलील यह थी कि उसने जुलाई, 2004 में वर्तमान पद पर उसकी नियुक्ति के दिन से ही कोई मानदेय या कोई अन्य भत्ते न तो लिए और न उसे संदत्त किए गए और इस प्रकार उक्त नियुक्ति के कारण उसे कोई आर्थिक लाभ नहीं प्राप्त हुआ था । दूसरी ओर याची के विद्वान काउंसेल की यह दलील है कि यह हो सकता है कि उसने कोई मानदेय आदि न लिया हो या प्राप्त न किया हो किन्तु वह तारीख 22.3.1991 के राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञापन में वर्णित सभी मानदेयों, भत्तों आदि को लेने और प्राप्त करने की हकदार थी और अब भी है । याची के विद्वान काउंसेल की दलील में काफी बल है । महादेव ***बनाम*** शांतिभाई और अन्य (40इएलआर 81) में उच्चतम न्यायालय का निम्नलिखित मत वर्तमान मामले के तथ्यों को पूरी तरह लागू होता है :-

"लाभ के पद से वास्तव में ऐसा पद अभिप्रेत है जिसकी बाबत कोई लाभ उपगत होता हो । यह आवश्यक नहीं है कि लाभ के पद के धारक के बारे में यह अनुमान लगाने की संभावना होनी चाहिए कि वह उसके द्वारा निर्वहन किए गए कर्त्तव्यों को ध्यान में न रखते हुए लाभ की कतिपय रकम प्राप्त करने के लिए बाध्य था ।"

38. इस मामले में अपीलार्थी महादेव को केन्द्रीय और पश्चिमी रेल प्रशासन द्वारा तैयार किए गए वकीलों के पैनल में सम्मिलित किया गया था और उसे, वह जब भी उस प्रशासन की ओर से किसी न्यायालय में उपसंजात हो, एक निश्चित फीस का संदाय किया जाना था । अपीलार्थी द्वारा यह दलील दी गई थी कि वह केवल उसी मामले में पारिश्रमिक प्राप्त होता था जिसमें वह उस प्रशासन की ओर से उपसंजात होना ठीक समझता था । उच्चतम न्यायालय ने उस दलील को खारिज कर दिया और सरकार के अधीन 'लाभ का पद' धारण करने के लिए उसे निरर्हित अभिनिर्धारित किया गया था । दोबारा, रविन्द्र कुमार नायक ***बनाम*** कलक्टर, मयूरभंज [(1999)2 एससीसी 627] के मामले में जो सौ रुपए की दैनिक फीस पर सहायक लोक अभियोजक के रूप में अधिवक्ता की नियुक्ति से संबंधित है, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त नियुक्ति 'लाभ का पद' धारण करने की कोटि में आती थी और यह महत्वपूर्ण नहीं था कि अपीलार्थी ने वस्तुतः कोई फीस प्राप्त नहीं की । इस प्रकार मामला यह है कि क्या पद का धारक किसी पारिश्रमिक या अन्य धनीय लाभ का 'हकदार' है और भले ही उसने कोई पारिश्रमिक या अन्य धनीय लाभ वास्तव में प्राप्त नहीं किया हो या आहरित नहीं किया हो । उच्चतम न्यायालय ने रावन्ना सुब्बन्ना ***बनाम*** कग्गीरप्पा (एआईआर 1954 एससी 653) में भी यह अभिनिर्धारित किया कि :

"'लाभ' शब्द धनीय लाभ की कल्पना का द्योतक है । यदि वास्तव में कोई लाभ है तो उसकी मात्रा या रकम महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु उक्त पद के संबंध में किसी व्यक्ति को प्राप्य धन की रकम, जिसे वह प्राप्त करता है, इस बारे में विनिश्चय करने के लिए महत्वपूर्ण नहीं हो सकती कि क्या उक्त पद कोई लाभ का पद है अथवा नहीं ।"

39. विरोधी पक्षकार की नियुक्ति के आदेश के सावधानीपूर्ण परिशीलन से और उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों और मतों की दृष्टि में उसके विश्लेषण से आयोग का यह समाधान हो जाता है कि परिषद् के अध्यक्ष के पद पर उसकी नियुक्ति से उसे 'लाभ' प्राप्त होता है और उसका पद संविधान के अनुच्छेद 102 (1) (क) के अर्थान्तर्गत 'लाभ' का पद है ।

40. अंत में विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई थी कि भले ही परिषद् के अध्यक्ष का पद सरकार के अधीन 'लाभ' का पद है, उसकी धारक निरर्हित नहीं होती है क्योंकि उस पद के संबंध में निरर्हता संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3(ज) और धारा 3(झ) के उपबंधों द्वारा हटा दी गई है । निर्देश की सुविधा के लिए 1959 के अधिनियम की धारा 3 के सुसंगत खंड (ज) और (झ) को नीचे उद्धृत किया जा रहा है ।

"3. कतिपय लाभ के पद निरर्हित न करेंगे -एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि निम्नलिखित पदों में से कोई भी पद, उसके धारक को संसद् के सदस्य चुने जाने या संसद् सदस्य होने या रहने के लिए वहां तक निरर्हित नहीं करेगा जहां तक कि वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद है, अर्थात् :-

(क).....

(ज) लोक महत्व के किसी मामले के बारे में सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी को सलाह देने के प्रयोजन के लिए या ऐसे किसी मामले की जांच करने या उस मामले में सांख्यिकी संगृहीत करने के प्रयोजन के लिए अस्थायी रूप से बनाई गई (चाहे एक या अधिक सदस्यों से मिलकर बनी) समिति के अध्यक्ष या सदस्य का पद यदि ऐसे पद का धारक प्रतिकारात्मक भते से भिन्न किसी पारिश्रमिक का हकदार नहीं है ;

(झ) किसी ऐसे निकाय से जो खंड (ज) में निर्दिष्ट है, भिन्न किसी कानूनी या गैर कानूनी निकाय के अध्यक्ष, निदेशक या सदस्य का पद, यदि ऐसे पद का धारक प्रतिकरात्मक भत्ते से भिन्न किसी पारिश्रमिक का हकदार नहीं है, किन्तु इसमें (i) अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट किसी कानूनी या गैर कानूनी निकाय के अध्यक्ष

का पद ; और (ii) अनुसूची के भाग 2 में विनिर्दिष्ट किसी कानूनी या गैर कानूनी निकाय के अध्यक्ष या सचिव का पद सम्मिलित नहीं है ;"

41. उपरोक्त धारा 3(ज) और धारा 3(झ) में निर्दिष्ट 'प्रतिकरात्मक भत्ता' पद उपरोक्त अधिनियम की धारा 2(क) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :-

"2(क) 'प्रतिकरात्मक भत्ता' से धन की वह राशि अभिप्रेत है जो किसी पद के धारक को, उस पद के कृत्यों के पालन में उसके द्वारा उपगत किसी व्यय की प्रतिपूर्ति करने के लिए उसे समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए दैनिक भत्ते जो भत्ता उस दैनिक भत्ते की रकम से अधिक न होगा जिसके लिए कोई संसद् सदस्य, [संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (1954 का 30)] के अधीन हकदार है, किसी प्रवहण भत्ते, मकान किराया भत्ते या यात्रा भत्ते के रूप में संदेय है ।"

42. धारा 3(ज), धारा 3(झ) और धारा 2(क) के ऊपर वर्णित उपबंधों के एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर वर्णित खंड (ज) और खंड (झ) के अधीन निरर्हता के विरुद्ध सुरक्षित किए जाने वाले किसी 'पद' के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी की जा सकेंगी :

पद धारक को 'प्रतिकरात्मक भत्ते' से भिन्न कोई पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होना चाहिए या उसे उसका हकदार नहीं होना चाहिए ; और

'प्रतिकरात्मक भत्ता' उस दैनिक भत्ते से अधिक नहीं होना चाहिए जिसके लिए कोई संसद् सदस्य हकदार है ।

43. आयोग ऊपर पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुका है कि विरोधी पक्षकार केवल कतिपय प्रतिकरात्मक भत्तों की ही हकदार नहीं है बल्कि तारीख 14 जुलाई, 2004 के उसकी नियुक्ति के आदेश के कारण उसके अतिरिक्त पांच हजार रुपए प्रतिमास के मानदेय की भी हकदार थी । अतः वर्तमान मामले में अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन निरर्हता के परिक्षेत्र से कतिपय पदों के धारकों को छूट देने के लिए 1959 के अधिनियम की धारा 3 के खंड (ज) और खंड (झ) में वर्णित पहली शर्त भी पूरी नहीं होती । अतः विरोधी पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल विधिमान्य रूप से यह दलील नहीं दे सकते या यह दावा नहीं कर सकते कि विरोधी पक्षकार द्वारा धारित पद 1959 के अधिनियम की धारा 3(ज) और/या धारा 3(झ) के उपबंधों के अधीन नहीं आता । यह उल्लेखनीय है कि विरोधी

पक्षकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल की स्वयं कि अभिस्वीकृति के अनुसार वह तारीख 22.3.1991 के राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञापन के निबंधनों के अनुसार छह सौ रुपए के दैनिक भत्ते की हकदार थी जब वह उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर यात्रा कर रही हो और जब राज्य से बाहर यात्रा कर रही हो तब वह सात सौ पचास रुपए प्रतिदिन दैनिक भत्ते की हकदार है । उक्त कार्यालय ज्ञापन में यह कथन है कि वह चालक द्वारा चालित कार, राज्य सरकार के गेस्ट हाउसों और सर्किट हाउसों में निःशुल्क आवास तथा जब दौरे पर हों, स्थानीय आतिथ्य की भी हकदार होगी । उपरोक्त को एंकसाथ पढ़ने पर उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर यात्रा के लिए छह सौ रुपए के दैनिक भत्ते की रकम को पदधारी को लाभ के स्रोत के रूप में मानी जा सकती है क्योंकि उसे केवल जेब से किए गए व्ययों को चुकाने के लिए प्रतिकरात्मक भत्ते के रूप में नहीं माना जा सकता । विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल की यह दलील कि विरोधी पक्षकार अन्यथा भी एक समृद्ध व्यक्ति है और राज्य सरकार द्वारा उसे प्रदत्त फायदे उसके लिए महत्वहीन हैं, खारिज किए जाने के लिए दी गई है । यहां पर विवाद्यक एक विधि के संबंध में है और न कि सरकार के अधीन लाभ के पद पर नियुक्त व्यक्ति की वित्तीय स्थिति या प्रतिष्ठा से संबंधित है ।

44. पूर्वोक्त तथ्यों की दृष्टि में आयोग का यह पूर्णतः समाधान हो गया है कि उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् के अध्यक्ष का पद जिसपर श्रीमती जया बच्चन की उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार द्वारा तारीख 14 जुलाई, 2004 के अपने कार्यालय ज्ञापन द्वारा नियुक्ति की गई है, उसमें विनिर्दिष्ट शर्तों के निबंधनों के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 102 (1)(क) के अर्थान्तर्गत 'उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन लाभ का पद' है । इसके अतिरिक्त आयोग का यह भी समाधान हो गया है कि परिषद् के अध्यक्ष का उक्त पद संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 के उपबंधों के अधीन संविधान के उक्त अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन निरर्हता से छूट प्राप्त नहीं है ।

45. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए आयोग की यह सुविचारित राय है कि श्रीमती जया बच्चन राज्य सभा के सदस्य बने रहने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् के अध्यक्ष के रूप में उसकी नियुक्ति पर 14 जुलाई, 2004 से संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन निरर्हित हो गई है ।

46. तदनुसार राष्ट्रपति से प्राप्त निर्देश उपरोक्त आशय की आयोग की राय के साथ वापस किया जाता है ।

(नवीन वी. चावला)	(बी. बी. टंडन)	(एन. गोपालस्वामी)
निर्वाचन आयुक्त	मुख्य निर्वाचन आयुक्त	निर्वाचन आयुक्त

स्थान : नई दिल्ली ।
तारीख : 2 मार्च, 2006

[फा. सं. एच-11026(1)/2006-वि. II]

एन. के. नम्पूतिरी, संयुक्त सचिव और विधायी परामर्शी

MINISTRY OF LAW AND JUSTICE

(Legislative Department)

NOTIFICATION

New Delhi, the 16th March, 2006

S. O. 352(E).—The following Order made by the President is published for general information :—

ORDER

Whereas a petition (undated) of alleged disqualification of Smt. Jaya Bachchan, a sitting Member of Parliament (Rajya Sabha) under clause (1) of article 103 of the Constitution has been submitted to the President by Shri Madan Mohan of Kanpur (Uttar Pradesh);

And whereas the said petitioner has averred in his petition that, after her election to the Rajya Sabha, the Uttar Pradesh Government appointed Smt. Jaya Bachchan as the Chairperson of Uttar Pradesh Film Development Council with effect from 14th July, 2004, thereby making her an holder of an office of profit within the meaning of sub-clause (a) of clause (1) of article 102 of the Constitution on account of the facilities provided to her;

And whereas the opinion of the Election Commission had been sought in pursuance of clause (2) of article 103 of the Constitution as to whether Smt. Jaya Bachchan has become subject to disqualification for being a member of that House under clause (1) of article 102 of the Constitution;

And whereas the Election Commission has given its opinion (*vide* Annex) that Smt. Jaya Bachchan became disqualified under sub-clause (a) of clause (1) of article 102 of the Constitution for being a member of the Rajya Sabha on, and from, the 14th day of July, 2004 on her appointment by the Government of Uttar Pradesh as the Chairperson of the Uttar Pradesh Film Development Council;

And whereas subsequent to the receipt of the Election Commission's opinion, several communications on this subject matter were received from various quarters and were carefully considered;

And whereas having carefully considered the facts on record as contained in the opinion of the Election Commission and having been fully satisfied therewith;

Now, therefore, I, A.P.J. Abdul Kalam, President of India, in exercise of the powers conferred on me under clause (1) of article 103 of the Constitution, do hereby decide that Smt. Jaya Bachchan stands disqualified for being a member of the Rajya Sabha on, and from, the 14th day of July, 2004.

PRESIDENT OF INDIA.

16th March, 2006.

ANNEX

Election Commission of India

NIRVACHAN SADAN
ASHOKA ROAD, NEW DELHI - 110 001

In re:

Disqualification of Smt. Jaya Bachchan, a sitting Member of Parliament (Rajya Sabha)

Reference case No. 3 of 2005

[Reference from the President of India under Article 103(2) of the Constitution of India]

Present :

For the Petitioner:

1. Shri S.N. Shukla, Advocate
2. Shri Madan Mohan, Petitioner

For Opposite party:

1. Shri Dinesh Dwivedi, Senior Advocate
2. Shri P.D. Gupta, Advocate
3. Shri Kamal Gupta, Advocate
4. Shri Ashish Mohan, Advocate

OPINION

This is a reference dated 20th September 2005, from the President of India, under Article 103(2) of the Constitution, seeking opinion of the Election Commission on the question whether Smt. Jaya Bachchan, a sitting Member of Parliament (Rajya Sabha), has become subject to disqualification for being a member of that House under Article 102(1) of the Constitution.

2. The question of alleged disqualification of Smt. Bachchan (opposite party) arose on a petition (undated) submitted by Sh. Madan Mohan (petitioner) of Kanpur (Uttar

Pradesh) to the President seeking disqualification of the opposite party under Article 103(1) of the Constitution. In the petition, the petitioner averred that after the election of the opposite party to the Rajya Sabha in June 2004, the Uttar Pradesh Government appointed her as the Chairperson of Uttar Pradesh Film Development Council, (hereinafter referred to as 'the Council') vide office memorandum dated 14th July 2004,under the signature of Chief Secretary to the State Government. The petitioner claimed that the O.M. dated 14.7.2004, appointing the opposite party as Chairperson, also conferred on her the status of a Cabinet Minister on her such appointment as chairperson. The petitioner's contention was that the facilities provided to the opposite party as Chairperson of the Council made her the holder of an office of profit within the meaning of Article 102(1)(a) and she has, thus, incurred disqualification on such appointment for being a member of the Rajya Sabha.

3. The opposite party was called upon by the Commission's notice dated 6th October, 2005 to submit her written statement in reply to the petition by 31st October, 2005, and the Commission also fixed a hearing on 28th November, 2005.

4. In her reply filed on 26.10.2005, the opposite party submitted that on her appointment as Chairperson of the Council, she was granted only certain 'FACILITIES' and not any salary, honorarium or allowance. She claimed that the 'FACILITIES' were provided on account of the status of Cabinet Minister granted to her, and not as the Chairperson of the Council. She further averred that Cabinet status was granted to her in view of her stature in the field of films and that the appointment was in an honorary capacity to aid and advise the Council. She also contended that she being a Minister in Uttar Pradesh (the reference, presumably, was to the Cabinet Minister's status granted to her), was protected from disqualification under the provisions of Section 3(a) of the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1959 (hereinafter referred to as '1959-

Act'), which declares that an office held by a Minister, Minister of State or Deputy Minister for the Union or for any State, whether ex officio or by name, shall not disqualify the holder thereof for being chosen as, or for being, a member of Parliament. She also requested for adjournment of hearing by 8 weeks on the ground that the records relating to her appointment as Chairperson of the Council were with the Allahabad High Court (Lucknow Bench) in connection with an election petition filed by the same petitioner challenging her election to the Rajya Sabha and she required more time for obtaining the documents and filing further reply.

5. On the above request, the Commission postponed the hearing to 7-12-05 and allowed the opposite party to file supplementary reply upto 21-11-2005. She was also asked to file copy of the election petition referred to in her reply and also the orders passed by the High Court in that matter.

6. The petitioner filed his rejoinder to the written statement of the opposite party on 29-11-2005. In the rejoinder, the petitioner reiterated that appointment of the opposite party to the office of Chairperson of the Council was made by the State Government and she was given the rank of Cabinet Minister by virtue of such appointment as Chairperson. He further submitted that in terms of her appointment order, the opposite party was entitled to the following benefits and facilities:-

- Honorarium of Rs.5,000/- per month.
- Daily allowance @ Rs.600/- per day within the State and Rs.750/- outside the State.
- Rs.10,000/- per month towards entertainment expenditure.
- Staff car with driver, telephones at office and residence, one P.S., one P.A. and two class IV employees.
- Body Guard and night escort.

- Free accommodation and medical treatment facilities to her and family members.

- Free accommodation in government circuit houses/guest houses and local hospitality while on tour.

7. The petitioner contended that the above facilities and pecuniary benefits made the office held by the opposite party, an office of profit within the meaning of Article 102 (1) (a) of the Constitution. He also stated that the opposite party had resigned from the same post at the time of contesting election to the Rajya Sabha in 2004 and that fact of her resignation itself made it evident that she considered the post as an office of profit attracting disqualification. The petitioner further submitted that the reliance placed by the opposite party on the provisions of section 3(a) of the 1959-Act was misplaced as the provisions of that section only save an office held by a Minister, whether *ex officio* or by name, and not the holder of an office who is given the status of a Minister, as in the present case. The petitioner also relied upon the opinion given by the Commission to the President in 1981 in the case of Shri R. Mohanrangam, the then sitting member of the Rajya Sabha, to the effect that the benefits received by him by virtue of his appointment to the office of Special Representative of Tamil Nadu Govt. made the office an office of profit even though he received no honorarium/salary in that case.

8. On 2nd December, 2005, the opposite party, through her counsel, submitted an application seeking further postponement of the hearing on the ground that due to the illness of her husband she would require at least a fortnight to file her further reply in the matter. The Commission acceded to this request and postponed the hearing to 28th December, 2005, with the extension of time upto 15th December, 2005, to file additional written statement, if any. On 20th December, 2005, the opposite party's counsel submitted another application praying for yet another postponement of hearing citing the illness of

her husband and stating that her ailing husband required her constant presence. The Commission granted this request as well and further postponed the hearing to 12th January, 2006. The time for filing of additional reply/written statement was also extended till 2nd January, 2006.

9. On 6th January, 2006, the opposite party submitted additional reply to the petition. In her supplementary reply, the opposite party stated that the petitioner had raised new pleadings in the rejoinder contrary to the normal accepted practice in judicial proceedings. She also reiterated that she had not accepted any salary/honorarium or compensatory allowance, and that she had only availed of "FACILITIES" in view of grant of Cabinet Minister's rank to her. She further stated that she had not availed of any residential accommodation in any form and no money had been spent on her from the State Exchequer. She added that she never used any telephone or medical facilities to which she was entitled vide her order of appointment. She also submitted that her resignation from the same post before contesting election to the Rajya Sabha had nothing to do with the issue of the office being an office of profit. She further stated that the question raised in the reference is subject matter of adjudication before the Allahabad High Court in Election Petition No.4 of 2004 filed by the same petitioner and, therefore, to avoid conflict of opinion, adjudication in the present reference case may be deferred till the High Court gives its decision.

10. In her additional reply, the opposite party also made a further request for postponement of hearing on the ground that records relating to her appointment in question are required to be obtained from the High Court. The Commission, however, did not accede to her request this time as repeated opportunities had already been given and the hearing was already postponed thrice on her request, and decided that hearing would be held on 12.1.2006, as scheduled.

11. At the hearing on 12-1-2006, the petitioner appeared alongwith his learned counsel, Shri S.N. Shukla. In his oral submissions, the learned counsel referred to the office memorandum No.492/19-2-2004-89/2001, dated 14-7-2004 of the Uttar Pradesh Government, appointing the opposite party as the Chairperson of the Council. He submitted that the memorandum appointing the opposite party as Chairperson of the Council clearly stated that by virtue of the appointment she would be granted the status of a Cabinet Minister and would be entitled to the facilities mentioned in the State Government's office memorandum no. 14/1/46/87-CX(1), dated 22-3-1991, as amended from time to time, which specifically enumerates salary/honorarium, allowances and other facilities to which the authorities granted the status of a Cabinet Minister are entitled. Shri Shukla stated that the opposite party was entitled to daily allowance of Rs. 600/- within Uttar Pradesh and Rs. 750/- outside the State, whereas a Member of Parliament is entitled to a daily allowance of only Rs.500/-. Thus, according to the learned counsel, as the daily allowance payable to the opposite party exceeded the amount of daily allowance payable to a Member of Parliament, the office of Chairperson of the Council could not be said to fall under the exempted category provided under clause (h) of section 3 of the 1959-Act.

12. Shri Shukla further submitted that for attracting the provisions of Article 102(1) (a) of the Constitution, three conditions are required to be satisfied, viz. (i) there should be an office to which appointment is made, (ii) it should be an office of profit, and (iii) the office should be one under the Government. According to the learned counsel, the fact that the office of the Chairman of the Council was in existence before the appointment of the opposite party to that post and other persons were appointed to the post from time to time made it clear that this was an office existing and independent of the opposite party, and thus the test laid down by the Supreme Court in *Kanta Kathuria vs*

Manak Chand Surana (AIR 1970 SC 694) was satisfied that it was an 'office' within the meaning of Article 102 (1)(a) of the Constitution. Coming to the second condition, Shri Shukla submitted that the language of the appointment order dated 14-7-2004 read with office memorandum dated 22-3-1991, as amended from time to time, made it clear that the opposite party was entitled to monthly honorarium, various allowances, and other facilities, such as accommodation, vehicle, staff, etc. and this, according to him, proved beyond any doubt that the office held by the opposite party is an 'office of profit'. He relied upon the judgement of the Supreme Court in the case of Shibu Shoren Vs Dayanand Sahay (AIR 2001 SC 2583) in which it was held that remuneration other than salary would also make an office an 'office of profit'. He also relied upon the order passed by the President in the case of disqualification of Shri Mohanrangam (Reference case no. 7 of 1981) in which case, Sh. Mohanrangam was disqualified on the opinion of the Commission. Regarding the third condition, Shri Shukla contended that the crucial test to determine whether an office is under the Government, is the test whether appointment is made by the Government and whether the incumbent can be removed from the office by the Government. Shri Shukla submitted that in the present case, there is no doubt or second opinion on the fact that the appointment was made by the Uttar Pradesh Government and that the State Government has the power to terminate the appointment. He also cited the decision of the Bombay High Court in Dr.Deorao Laxman Anande Vs. Keshav Laxman Borkar (AIR 1958 BOMBAY 314) in support of the contention that the crucial test to determine this issue is the test of appointment. Shri Shukla further submitted that the budget of the Council was provided fully from the funds of the State Government and that the opposite party performed functions of and for the Government as Chairperson of the Council.

13. Shri Dinesh Dwivedi, learned senior counsel, appeared for the opposite party. He contended, at the outset, that the post held by the opposite party would fall in the exempted category under clause (h) and clause (i) of section 3 of the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1959. Referring to the contention of the learned counsel for the petitioner that the opposite party was entitled to higher daily allowance than the daily allowance payable to a Member of Parliament, he submitted that the daily allowance was payable to the opposite party only when she performed journey in connection with her work as Chairperson of the Council and not as sitting fee.

14. According to him, as per the O.M. dated 14.7.2004, appointing the opposite party as the Chairperson of the Council, she was not entitled to any salary, and she was only provided 'facilities', by virtue of the status of Cabinet Minister granted to her. Such 'facilities' did not include salary or any pecuniary gain, and she only drew compensatory allowance. He contended that cabinet status was granted to her in view of her stature as a film personality, and this was independent of her appointment as Chairperson of the Council. Shri Dwivedi submitted that a Cabinet Minister was entitled to certain facilities and the opposite party was granted only such facilities. He referred to the definition of 'compensatory allowance' as per Section 2(a) of the 1959-Act. He stated that the opposite party did not draw any honorarium, or avail of facilities of residential accommodation or telephone, and therefore, the office of Chairperson could not be treated as an office of profit, as there was no pecuniary benefit accruing to the opposite party, who is a well off person herself.

15. The learned senior counsel further contended that the office of Chairperson of the Council did not fulfill the requirements to be treated as an office under the Government. According to him, power of appointment and removal from the post vesting in the Government was not sufficient to bring the post under the category of 'office under the

government'. He submitted that the control exercised by the Government on the performance of duties by the incumbent was critical to determine whether the post held by her could be treated as an office under the government for the purposes of Article 102(1)(a). The learned counsel referred to the judgment of the Supreme Court in Sibhu Soren's case to support this claim. He claimed that the Council was an autonomous body to advise the government on matters related to development of films, and the government did not interfere in the functioning of the Council in any manner. He also stated that the Council, by the very nature of its duties, could not be said to be performing any important government functions. It could be considered as an optional function of the government. In view of these, the learned senior counsel contended that the Council was not an office under the government. Shri Dwivedi further stated that the council did not have any budget of its own, and payment of expenses of the Council was made from government funds. Shri Dwivedi contended that in the case of Sibhu Soren, he had received honorarium also in addition to compensatory allowances, and hence that case was distinguishable from the present case where no honorarium has been drawn by the opposite party. He also contended that the case of Sh. Mohanrangam, referred to by the petitioner, was not applicable in the present case, as the findings in that case were contrary to the rulings of the Supreme Court in subsequent cases. On the other hand, he relied upon the decision of the Karnataka High Court in the case of Ramakrishna Hegde (AIR 1993 KT 54).

16. The learned counsel for the petitioner, in his rejoinder, stated that the question of an office falling under the exemption clause under Section 3(h) or 3(i) of the 1959-Act would arise only where a person was entitled only to compensatory allowance not exceeding the daily allowance to which a Member of Parliament is entitled. He stated that in the present case, the petitioner was entitled to daily allowance, compensatory

allowance, house rent, and honorarium, apart from facilities such as vehicle, driver, staff, telephone, etc. According to him, the argument that the opposite party was entitled to only facilities was misconceived. The learned counsel submitted that it was immaterial whether the entitlement was in the name of salary or under any other nomenclature, and the emphasis was on 'entitlement' and not on actual drawing of the amount. He submitted that a person may not draw the amount at present, but may very well choose to draw it at a future juncture. He added that if she was entitled to an amount that would bring such entitlement within the meaning of 'profit'. He relied upon the judgments of the Supreme Court in the case of *M.V. Rajashekharan Vs. Vatal Nagaraj* [(2002) 2 SCC 704] and *Rabindra Kumar Nayak Vs. Collector, Mayurbhanj* [(1999) 2 SCC 627] to support his contention that actual drawing of the amount is not relevant, and it is the entitlement to draw the amount that is crucial in deciding the issue of disqualification. The learned counsel also submitted that Sh. Ramakrishna Hegde's case, relied upon by the opposite party, was not applicable here as in that case, the appointment order itself made it clear that Sh. Hegde, as Deputy Chairman of the Planning Commission, would not be entitled to any salary, and that he would only draw compensatory allowance.

17. On conclusion of the hearing, both the parties were given one week's time to file written arguments, which they did.

18. The Commission has carefully considered and duly analysed the written and oral submissions made on behalf of both the parties.

19. First of all, the Commission would like to examine the effect of pendency of Election Petition No. 4 of 2004 before the Allahabad High Court on the present proceedings before the Commission. It is seen that the main issue raised in the election petition is the rejection of nomination of the petitioner (also the petitioner herein). In any event, the challenge in an election petition is limited to the challenge against the election

concerned, and it cannot be a ground for deferring a proceeding under Article 103(1) relating to the issue of post-election disqualification, which has to be decided by the President, and President alone, on the opinion tendered by the Commission. The Supreme Court's decision in *Election Commission Vs. Dr. Subramanian Swamy and Others* (AIR 1996 SC 1810) conclusively settles this issue.

20. The main question which falls for determination of the Commission is whether the office of the Chairperson of the Uttar Pradesh Films Development Council to which the opposite party has been appointed on 14.7.2004 is an 'office of profit under the Government of Uttar Pradesh' within the meaning of Article 102(1)(a) of the Constitution. The underlying principle and the real intention of the constitution makers in incorporating the provisions relating to disqualification under Article 102(1)(a) is to keep the legislatures independent of the executive. It was felt desirable that members of legislatures should not feel themselves beholden to the executive government and lose their independence of thought and action in the discharge of their public duties as representatives of the people. This provision also acts as a check on the executive governments to hold out blandishments to members of the legislatures, so that the latter would be free to carry out their duties to their electorates uninfluenced by any considerations of personal loss or gain. Explaining the above logic behind the provisions of Article 102(1)(a), the Supreme Court observed in *Ashok Kumar Bhattacharyya v. Ajoy Biswas* (AIR 1985 SC 211):

> "The approach which appeals to us to interpret the expression 'office of profit' is that it should be interpreted with the flavour of reality bearing in mind the **object for enactment of Article 102(1)(a), namely, to eliminate or in any event to reduce the risk of conflict between the duty and interest amongst members of the legislature by ensuring that the legislature does not have**

persons who receive benefits from the executive and may thus be amenable to its influence."

21. Again, emphasizing the object of Article 102(1)(a) [which is similar to Article 191(1)(a) of the Constitution], the Supreme Court observed in *M.V. Rajashekaran Vs. Vatal Nagaraj* (AIR 2002 SC 742):

> "The very object of providing the disqualification under Article 191 of the Constitution is that the person elected to the Legislative Assembly or the Legislative Council should be free to carry on his duty fearlessly without being subjected to any kind of governmental pressure. The Court, therefore is required to find out as to whether there exists any nexus between the duties discharged by the candidate and the Government, and that a conflict is bound to arise between impartial discharge of such duties in course of his employment with the duties which he is required to discharge as a Member of Legislature, on being elected. While examining the aforesaid question the Court has to look at the substance and not the form and, further it is not necessary that all factors and tests laid down in various cases must be conjointly present so as to constitute the holding of an office of profit under the Government."

22. The term 'office of profit' is not defined either in the Constitution or in the Representation of the People Act, 1951. However, the Commission has the benefit of illuminating decisions of the Supreme Court in a catena of cases in which the apex court has considered the question on various occasions. The Supreme Court has held that the question has to be decided on the facts of each case. The tests laid down by the Supreme Court basically reduce to the question whether the person is appointed to an office under the Government and whether such office is an office yielding profit to the holder. In *Maulana Abdul Shakur Vs. Rikhab Chand* (AIR 1958 SC 52), the supreme Court held:

> "..the power of the government to appoint a person to an office or to continue him in that office or revoke his appointment at their discretion and payment from out of Government revenues are important factors in determining whether a person is

holding an office of profit under the Government, though payment from a source other than Government is not always a decisive factor."

23. In *Shivamurthy Swami Inamdar Vs. Agadi Sanganna Andanappa* (AIR 1971 SCC 870), the Supreme Court summed up the following tests to determine whether an office is an office of profit under the Government:

(i) Whether the Government makes the appointments;

(ii) Whether the Government has the right to remove or dismiss the holder;

(iii) Whether the Government pays remuneration;

(iv) What the functions of the holder are and does he perform them for Government; and

(v) Whether the Government exercises any control over the performance of these functions.

24. The Supreme Court has held in various subsequent cases that all the above tests need not co-exist conjointly for determining whether an office is an office of profit under the government. In *Madhukar G.E. Pankakar v. Jaswant Chobbildas Rajani* [(1977) SCC 70], the Supreme Court observed that for deciding the question whether an office is an 'office of profit' under the government, it is the circumstances that have to be looked at and not the form and further all the several factors stated by the Court, as determinative of the holding of an office under the Government, need not be conjointly present.

25. For deciding the present question referred to it by the President, the Commission has to be guided by, and apply, the above tests laid down by the Supreme Court to the facts and circumstances of the present case of appointment of the opposite party to the post of Chairperson of the Council. The word 'office' has been interpreted by the Supreme Court to mean a position or place to which certain duties are attached,

especially one of a more or less public character. In *Kanta Kathuria Vs. Manak Chand Surana* (AIR 1970 SC 694), the test laid down by the Supreme Court was that the office should be subsisting, permanent, substantive position which had an existence independent from the person who filled it, which went on and was filled in succession by successive holders. This principle was upheld in the case of *Rabindra Kumar Nayak Vs. Collector, Mayurbhanj* [(1999) 2 SCC 627] also. In the case of *M. V. Rajashekharan Vs. Vatal Nagaraj* [(2002) 2 SCC 704], even the office of Chairman of one man Commission specially constituted was also held to be an 'office' for the purpose of disqualification. In the present case, it is evident from the admitted facts that the office of Chairperson of the Council is existing independently of the present incumbent and has been held by various persons, including Chief Secretary to the Govt. of Uttar Pradesh, from time to time. Thus, the first requirement of Article 102 (1) (a) of the Constitution is met that the opposite party has been appointed by the Govt. of Uttar Pradesh to an 'office' within the meaning of Article 102 (1) (a).

26. There is also little scope for argument or dispute, as sought to be contended or raised by the learned senior counsel for the opposite party, that the office to which she has been appointed is not an office under the Govt. of Uttar Pradesh. It is not disputed that the appointment in the present case has been made by the Govt. of Uttar Pradesh, as is evident from the appointment order dated 14th July, 2004 which is signed by the Chief Secretary to Govt. of Uttar Pradesh and which shows *ex facie* that the appointment has been made in the name of the Governor of the State. The learned senior counsel for the opposite party also fairly conceded that the power to terminate the appointment of the opposite party as the Chairperson of the Council vests in, and rests with, the Govt. of Uttar Pradesh. Further, the funds of the Council are provided wholly by the State Govt.

and it is fairly conceded that the Council has no independent budget and its expenditure is met by the administrative department of the State Govt.

27. The learned senior counsel for the opposite party cited the judgment of the Supreme Court in *Satrucharla Chandrasekhar Raju Vs. Vyricherla Pradeep Kumar Dev* (AIR 1992 SC 1959), wherein it was observed that the true test for determining whether a person is holding an office of profit under the Government is the degree of control the Government has over the office, its composition, the degree of its dependence on the government for its financial needs and the functional aspect, namely, whether the body is discharging any important Governmental function or just some function which is merely optional from the point of view of the Government. He stated at the hearing that the Council was not performing any important governmental functions and its activities could only be treated as optional from the point of view of the Government as it was only advising the Government on policies related to development of films in the State.

28. The Commission sees no force in the above averment of the learned senior counsel of the opposite party. The Council has been set up by the State Govt. to aid and advise it in the matters relating to development of film industry in the State. The very fact that the State Govt. has considered it necessary to set up the Council and is spending its precious funds on the Council shows that the Govt. is interested in the development of film industry in the State and has undertaken the task by setting up the Council to aid and advise it in this behalf. The further fact that the opposite party was appointed to the office of Chairperson of the Council with the status of a Cabinet Minister with the attendant benefits and facilities must lead to the obvious conclusion that the Council and its Chairperson had certain important duties to perform and tasks to accomplish for the Government. No Government would set up a Council and make appointments thereto with such high status without any significant reason or end to achieve. It is thus futile to

contend that the Council is not performing any important function of or for the Government.

29. It was also averred by the learned senior counsel for the opposite party that the Council is an autonomous body, not subject to the control of the Government. But nothing has been brought on record by him to support or substantiate his above averment. On the other hand, the very fact that the Council has no budget of its own and its administrative expenses are met by the department administratively incharge of the Council negates the averment of learned senior counsel for the opposite party of the Council being an autonomous body and the Government having no control over it.

30. Having regard to the above, the tests laid down by the Supreme Court to determine whether an office is 'an office under the Government' are fully satisfied in the present case. The appointment has been made by the State Government, which also has the power to terminate the appointment at its will, the expenditure on the maintenance of the office is wholly borne by the State Government, the incumbent Chairperson of the Council performs functions for the Government and the Government controls the functioning of the Council. Thus, there is no manner of any doubt that the office of the Chairperson of the Council to which the opposite party has been appointed is 'an office under the Government of Uttar Pradesh'.

31. The main controversy between the contesting parties in the present case is on the question whether the office of the Chairperson of the Council held by the opposite party is an 'office of profit'. The case of the learned counsel for the petitioner is that by virtue of the appointment order dated 14th July, 2004, of the opposite party whereby she was conferred the status of a Cabinet Minister, she is entitled to the following remunerations and benefits in terms of the State Government's office memorandum No. .14/1/46/87-CX(1), dated 22-3-1991, as amended from time to time:

- Honorarium of Rs.5,000/- per month.
- Daily allowance @ Rs.600/- per day within the State and Rs.750/- outside the State.
- Rs.10,000/- per month towards entertainment expenditure.
- Staff car with driver, telephones at office and residence, one P.S., one P.A. and two class IV employees.
- Body Guard and night escort.
- Free accommodation and medical treatment facilities to her and family members.
- Free accommodation in government circuit houses/guest houses and hospitality while on tour.

32. The case set up by the learned senior counsel for the opposite party, on the other hand, is that she is not entitled to any Honorarium mentioned above and that she has been granted only the 'FACILITIES' mentioned in the above referred O.M. dated 22-3-1991. To examine the rival contentions, it is appropriate to reproduce the appointment order dated 14th July, 2004, of the State Government appointing the opposite party as Chairperson of the Council:

"कार्यालय - ज्ञाप

श्री राज्यपाल महोदय श्रीमती जया बच्चन, मा0 संसद सदस्य, राज्य सभा को उत्तर प्रदेश राज्य फिल्म विकास परिषद का अध्यक्ष मनोनीत किये जाने की सहर्ष स्वीकति प्रदान करते हैं।

2. श्री राज्यपाल महोदय श्रीमती जया बच्चन, मा0 संसद सदस्य, को उत्तर प्रदेश राज्य फिल्म विकास परिषद के अध्यक्ष के रूप में कैबिनेट मंत्री का स्तर भी प्रदान करते है, जिसके फलस्वरूप उन्हें समय-समय पर यथा संशोधित गोपन अनुभाग-1 के कार्यालय ज्ञाप संख्या-14/1/46/87-सी0 एक्स0(1), दिनांक 22 मार्च, 1991 में वर्णित सुविधाएं उक्त कार्यालय ज्ञाप में इंगित प्रकियानुसार प्राप्त होंगी।

हस्ताक्षर
(करनैल सिंह)
प्रमुख सचिव"

33. A bare reading of the above appointment order issued by the State Government negatives the contention of the learned senior counsel for the opposite party. The O.M. dated 22.3.1991, referred to in the appointment order, specifies the 'salary/allowances and other facilities' to which a person appointed to a post and granted the status of a Cabinet Minister becomes entitled in terms of that O.M. The contention of the learned senior counsel for the opposite party that she was granted only 'facilities' and not the salary or allowances payable to the holder of such office is not borne out or substantiated by the express wording of her appointment order. The word 'facilities' in the O.M. dated 22.3.1991, has to be read as *ejusdem generis* to the word 'other' used in that O.M. as an adjective to the word 'facilities' and, when so read, leads to the irresistible inference and conclusion that the 'salary/allowance' is also a facility within the meaning of said O.M. attached to the office of the Chairperson of the Council. Thus, by virtue of her appointment as Chairperson of the Council vide the State Government O.M. dated 14.7.2004, she was made entitled to the Honorarium of Rs.5,000/- per month and also all other allowances and facilities specified in the State Government's O.M. dated 22.3.1991, as amended from time to time, and not merely the facilities of accommodation, staff car, TA/DA, etc., as contended by the learned senior counsel for the opposite party. The averment of the said counsel that the opposite party was entitled to TA/DA only when she proceeded on tour and that she was not granted any daily allowance for attending the sittings of the Council further supports the view that she was made entitled to a lump sum Honorarium of Rs.5,000/- per month in lieu of any daily allowance or sitting fee.

34. The following observation of the Supreme Court in *Shibu Soren Vs. Dayanand Sahay* (AIR 2001 SC 2583) is relevant on this issue:

"The expression "office of profit" has not been defined either in the Constitution or in the Representation of the People Act. In common parlance, the expression 'profit' connotes an idea of some pecuniary gain. If there is really some gain, its label - 'honorarium' - 'remuneration' - 'salary' is not material - it is the substance and not the form which matters and even the quantum or amount of "pecuniary gain" is not relevant - what needs to be found out is whether the amount of money **receivable** by the concerned person in connection with the office he holds, gives to him some "pecuniary gain", other than as 'compensation' to defray his out of pocket expenses, which may have the possibility to bring that person under the influence of the executive, which is conferring that benefit on him."

35. Viewed in the light of the above observation of the Supreme Court, no one is left in any manner of doubt that the honorarium of Rs.5,000/- per month payable to the Chairperson of the Council is 'pecuniary gain' to the holder of that office and is not by way of any compensatory allowance to defray out of pocket expenses.

36. The learned senior counsel for the opposite party sought to rely on the judgment of the Karnataka High court in *Ramakrishna Hegde Vs. State of Karnataka* (AIR 1993 Karnataka 54) in support of his submission that the opposite party was not granted any honorarium. The case of Ramakrishna Hegde is distinguishable on facts from the present case of the opposite party. In Shri Hegde's case, in the order of his appointment as Deputy Chairman of the Planning Commission itself, it was specifically stated that he was not entitled to any salary, and would draw only traveling allowance/daily allowance, conveyance allowance, etc., whereas, as seen above from the appointment order of the opposite party in the present case, that appointment order makes her entitled to 'honorarium' of Rs.5000/- per month in addition to various other allowances and facilities as per the State Government's O.M. dated 22.3.1991. It has already been seen that 'entitlement' to honorarium and other allowances makes the office an office of profit.

37. The next contention of the learned counsel for the opposite party was that she had neither drawn nor been paid any honorarium or any other allowances, right since the day of her appointment to the present office in July 2004 and, thus, there has been no pecuniary gain to her by virtue of her said appointment. The contention of the learned counsel for the petitioner, on the other hand, is that she may not have drawn or received any honorarium, etc., so far, but she was and is still 'entitled' to draw and receive all honoraria, allowances, etc., enumerated in the State Government's O.M. dated 22.3.1991. There is much force in the contention of the learned counsel for the petitioner. The following observation of the Supreme Court in *Mahadeo Vs. Shantibhai and Others* (40 ELR 81) applies aptly to the facts of the present case:

> "An office of profit really means an office in respect of which a profit may accrue. It is not necessary that it should be possible to predicate of a holder of an office of profit that he was bound to get a certain amount of profit irrespective of the duties discharged by him."

38. In this case, the appellant Mahadeo was included in the panel of lawyers prepared by the Central and Western Railway Administration and he was to be paid a certain fee as and when he appeared before any court on behalf of that administration. It was contended by the appellant that he was to receive remuneration only in case he thought it proper to appear in any case on behalf of that administration. The Supreme Court rejected that contention and held him to be disqualified for holding an 'office of profit' under the government. Again, in the case of *Rabindra Kumar Nayak Vs. Collector, Mayurbhanj* [(1999) 2 SCC 627] which related to the appointment of an advocate as an assistant public prosecutor on a daily fee of Rs.100/-, the Supreme Court held that the said appointment amounted to holding an 'office of profit' and it was immaterial that the appellant did not in fact receive any fee. Thus, what matters is whether the holder of

office is 'entitled' to any remuneration or other pecuniary gain, and not whether he or she has actually received or drawn any remuneration or other pecuniary gain. The Supreme Court also held in *Ravanna Subanna Vs. Kaggeerappa* (AIR 1954 SC 653) that:

> "The word 'profit' connotes the idea of pecuniary gain. If there is really a gain, its quantum or amount would not be material but the amount of money **receivable** by a person in connection with the office he holds may be material in deciding whether the office really carries any profit."

39. On the careful perusal of the appointment order of the opposite party and its analysis in the light of the above decisions and observations of the Supreme Court, the Commission is satisfied that her appointment to the post of Chairperson of the Council carries 'profit' and her office is an 'office of profit' within the meaning of Article 102(1)(a) of the Constitution.

40. Lastly, it was contended by the learned senior counsel for the opposite party that even if the post of Chairperson of the Council is an 'office of profit' under the Government, the holder thereof is not disqualified as the disqualification in respect of that post stands removed by the provisions of sections 3(h) and 3(i) of the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1959. For facility of reference, the relevant clauses (h) and (i) of section 3 of the 1959-Act are reproduced below:

> "3. *Certain offices of profit not to disqualify.* – It is hereby declared that none of the following offices, in so far as it is an office of profit under the Government of India or the Government of any State, shall disqualify the holder thereof for being chosen as, or for being, a member of Parliament, namely:-
>
> (a) .....
>
> (h) the office of chairman or member of a committee (whether consisting of one or more members), set up temporarily for the purpose of advising the Government or any other authority in respect of any matter of public importance or for the purpose of making an inquiry into, or collecting statistics in respect of, any such matter, **if the holder of such office is not entitled to any remuneration other than compensatory allowance;**

(i) the office of chairman, director or member of any statutory or non-statutory body other than any such body as is referred to in clause (h), **if the holder of such office is not entitled to any remuneration other than compensatory allowance**, but excluding (i) the office of chairman of any statutory or non-statutory body specified in Part II of the Schedule; (ii) the office of chairman or secretary of any statutory or non-statutory body specified in Part II of the Schedule;"

41. The term 'compensatory allowance' referred to in the above sections 3(h) and 3(i) has been defined in section 2(a) of the above Act as follows:

"2(a) 'Compensatory Allowance' means any sum of money payable to the holder of an office by way of daily allowance [such allowance not exceeding the amount of daily allowance to which a member of Parliament is entitled under [the Salary, Allowances and Pension of Members of Parliament Act, 1954 (30 of 1954)]], any conveyance allowance, house rent allowance or traveling allowance for the purpose of enabling him to recoup any expenditure incurred by him in performing the functions, of that office."

42. A conjoint reading of the abovementioned provisions of sections 3(h), 3(i) and 2(a) makes it clear that for an 'office' to be protected against disqualification under the abovementioned clauses (h) and (i), the following conditions must be satisfied:

The holder of office should not be in receipt of, **or entitled to**, any remuneration other than 'compensatory allowance'; and

The 'compensatory allowance' should not exceed the daily allowance to which a Member of Parliament is entitled.

43. The Commission has already held above that the opposite party is not only entitled to certain compensatory allowances but also an honorarium of Rs.5,000/- per month in addition by virtue of her appointment order dated 14th July, 2004. Thus, the very first condition mentioned in clauses (h) and (i) of section 3 of 1959-Act for exempting the holders of certain offices from the purview of disqualification under

Article 102(1)(a) is not satisfied in the present case. Therefore, the learned senior counsel for the opposite party cannot validly contend or claim that the office held by the opposite party is covered by the provisions of section 3(h) and / or section 3(i) of the 1959-Act. It is also noteworthy that, as per the own admission of the learned senior counsel for the opposite party, she is entitled to a daily allowance of Rs.600/- while traveling inside the State of Uttar Pradesh and Rs.750/- per day while traveling outside it, in terms of the State Government's O.M. dated 22.3.1991. The said O.M. also states that she would be entitled to a chauffer driven car, free accommodation in the State Government Guest Houses and Circuit Houses and also local hospitality while on tour. On a conjoint reading of the above, the amount of daily allowance of Rs.600/- for travel inside the State of Uttar Pradesh can also be considered as a source of profit to the incumbent, as it cannot be considered to be mere compensatory allowance to defray out of pocket expenses. The submission of the learned senior counsel that the opposite party is an affluent person otherwise and that the benefits granted to her by the State Government are immaterial to her is only to be stated to be rejected. The issue here is one of law and not the financial status or standing of the person appointed to the office of profit under the government.

44. In view of the forgoing, the Commission is fully satisfied that office of Chairperson of the Uttar Pradesh Film Development Council to which Smt. Jaya Bachchan has been appointed by the State Government of Uttar Pradesh by its O.M. dated 14th July, 2004, on the terms of conditions specified therein, is an 'office of profit under the Government of Uttar Pradesh' within the meaning of Article 102(1)(a) of the Constitution. Further, the Commission is also satisfied that the said office of Chairperson of the Council is not exempt, under the provisions of section 3 of the Parliament

(Prevention of Disqualification) Act, 1959, from disqualification under the said Article 102(1)(a) of the Constitution.

45. Having regard to the above, the Commission is of the considered opinion that Smt. Jaya Bachchan became disqualified under Article 102(1)(a) of the Constitution for being a member of the Rajya Sabha on, and from, the 14th July, 2004 on her appointment by the Government of Uttar Pradesh as Chairperson of the Uttar Pradesh Film Development Council.

46. The reference from the President is accordingly returned with the opinion of the Commission to the above effect.

(Navin B. Chawla)	(B.B. Tandon)	(N. Gopalaswami)
Election Commissioner	**Chief Election Commissioner**	**Election Commissioner**

Place : New Delhi.
Dated : 2nd March, 2006

[F. No. H-11026/1/2006-Leg.II]

N. K. NAMPOOTHIRY, Jt. Secy. & Legislative Counsel

Printed by the Manager, Govt. of India Press, Ring Road, Mayapuri, New Delhi-110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi-110054.